CENTRE OF DISTANCE EDUCATION

Acharya Nagarjuna University, Nagarjuna Nagar

M.A. II YEAR

HINDI PAPER - 3

भारतीय साहित्य

Indian Literature

Department of Hindi, Acharya Nagarjuna University, Nagarjuna Nagar

Lesson Writers :

1. **Dr. Shaik Moulali,** M.A., Ph.d.
2. **Inampudi Kavitha,** M.A.

भारतीय साहित्य INDIAN LITERATURE

प्रश्न :-

1. भारतीय साहित्य के स्वरूप और उद्देश्य की विवेचना कीजिए।
2. भारतीय साहित्य के सामाजिक स्वरूप की चर्चा कीजिए, साहित्य और जीवन का सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
3. भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
4. हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्या पर चर्चा कीजिए।
5. बंगला भाषा का सामान्य परिचय देते हुए उसके उद्भव एवं आदिकाल पर संक्षिप्त चर्चा कीजिए।
6. बंगला के पूर्व मध्यकालीन साहित्य का परिचय दीजिए।
7. बंगला साहित्य के उत्तर मध्यकालीन साहित्य का परिचय दीजिए।
8. 19 वीं शताब्दी में बंगला साहित्य के विकास की चर्चा कीजिए।
9. बीसवीं शताब्दी में बंगला साहित्य के विकास पर विवेचन कीजिए।
10. बंगला नाटक के उद्भव और विकास की समीक्षा कीजिए।
11. बंगला के आधुनिक कालीन उपन्यास साहित्य का मूल्यांकन कीजिए।
12. बंगला भाषा के कहानी - साहित्य पर विचार प्रस्तुत कीजिए।
13. बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ के योगदान पर प्रकाश डालिए।
14. बंगला भाषा में गद्य साहित्य के उद्भव और विकास का परिचय दीजिए।
15. बंगला साहित्य और हिन्दी साहित्य के आरम्भकाल का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
16. बंगला साहित्य एवं हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।
17. उत्तर मध्यकालीन बंगला एवं हिन्दी साहित्य की तुलना कीजिए।
18. आधुनिक काल में रचित बंगला एवं हिन्दी साहित्य की तुलना कीजिए।

भारतीय साहित्य

प्र.1. भारतीय साहित्य के स्वरूप और उद्देश्य की विवेचना कीजिए।

रूपरेखा :-

1. साहित्य का व्यापक स्वरूप
2. भारतीय साहित्य के दो पक्ष
3. पाश्चात्य विद्वानों के मत
4. काव्य की प्रेरणा
5. साहित्य (काव्य) का प्रयोजन
6. हिन्दी कवियों का मन्तव्य
7. उपसंहार

1. साहित्य का व्यापक स्वरूप :-

साहित्य शब्द बडा व्यापक है 'सहितस्य भाव: साहित्यक - जिस में हित की भावना निहित हो, वह साहित्य कहलाता है। साहित्य में समान रूप से सब के हित की भावना निहित होती है। लेकिन, उसके स्वरूप के विषय में विद्वानों के मतभेद हैं।' मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्येक जीवधारी अपने अहंभाव को पुष्ट करने के लिए जो आत्म-प्रकाशन करता है, उस से साहित्य का सृजन होता है आदर्शवादी के अनुसार साहित्य के द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के निकर पहुँचता है। नीतिवादी का कथन है कि साहित्य से मन और आत्मा का परिष्कार होता है। कलावादी साहित्य का कोई उद्देश्य व स्वरूप नहीं मानते। निष्कर्षत: हम एक नियम पर पहुँचते हैं - ज्ञान-राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है।

साहित्य का निर्माण भाषा, विचार, कल्पना, और भावों द्वारा होता है। विचार यदि कल्पनात्मक ढ़ंग से प्रकर किए जाते हैं, तो साहित्य का स्वरूप ग्रहण कर लेते हों सोद्देश्य कल्पना को साहित्य कहा जाता है। साहित्य कदापिनिरुद्देश्य नहीं होता। कल्पना का सम्बन्ध जनहित से अवश्य होना चाहिए। साहित्य वह रचना है कि जिस में आनन्द के साथ किसी सत्य का उद्घाटन किया गया हो। जिसकी भाषा परिमार्जित एवं प्रभावशालिनी हो। साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है।

2. भारतीय साहित्य के दो पक्ष :

भारतीय साहित्यकारों के अनुसार साहित्य के दो स्वरूप हैं –

1. अध्यात्मिक पक्ष और 2. लौकिक पक्ष 1 भारतीय साहित्यकार साहित्य का प्रथम स्वरूप मानव मात्र के अन्तस्तल में व्याप्त भावनाओं का अनुभव कर ब्रहमानन्द सहोदेर रस की अनुभूति प्राप्त करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में साहित्य का प्रधान स्वरूप 'रस' की अनुभूति है। रसानुभूति के अतिरिक्त लौकिक पक्ष में भारतीय साहित्यकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में विलक्षणता और कीर्ति तथा प्रीति की प्राप्ति साहित्य का उद्देश्य स्वीकार करते हैं।

बिहारी के निम्न लिखित दोहे से महाराजा जयसिंह को उदबोधन होकर, राजा कर्तव्योन्मुख हुए।

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।

अलि कली ही सों बिंध्यो, कोमल और सरस भी है।

वह कान्ता (पत्नी) मधुर प्रेमपूर्ण कथन के समान होता है, जिसे पूर्ण करने में दु:ख और भाव का अनुभव नहीं होता, बल्कि आनन्द ही प्राप्त होता है।

3. पाश्चात्य विद्वानों के मत :

साहित्य के उद्देश्य और स्वरूप के विषय में पश्चात्म विद्वानों के अनेक मत हैं। फ्रायड के अनुसार अमुक्त भावनाओं की अभिव्यक्ति साहित्य का मुख्य लक्ष्य है। उनका कथन है कि जब वास्तविक रूप में काम का उपभोग न तब साहित्य की सृष्टि होती है। एडलर के अनुसार मनुष्य का चिरकालिक हीनता अथवा प्रमुत्वशक्ति की भावना तृप्ति को ही साहित्य का उद्देश्य माना जाता है। उनके अनुसार साहित्य जीवन के अभावों की पूर्ति मात्र है। क्रोचे ने अभिव्यंजनावाद को साहित्य का मूल उद्देश्य स्वीकाार किया है। अभिव्यंजना के अनुसार साहित्य का उद्देश्य पदार्थों की सफल तथा स्पष्ट अभिव्यक्ति है। ब्रेडले का कथन है कि कविता, कविता के लिए होती है। वह स्वयं साध्य है, साधन नहीं। मार्क्सवादी साहित्य का उद्देश्य प्रचार मानते हैं, जो बिलकुल असंगत है।

साहित्य में समन्वय की भावना होती है यही भावना साहित्य का मूल है। मनुष्य चिरकाल से मानव- दानव, जड-चेतन, दृश्य-अदृश्य, विचार – अविचार और भाव-करता आ रहा है। अत: इसके लिए विचारों और भावों का पारस्परिक विनिमय अत्यन्त आवश्यक है।

साहित्य के मूल में स्वयं को दूसरे के निकट लाने की भावना काम करती है। इस सहयोग की भावना का व्यापक प्रसार ही साहित्य का उद्देश्य है। साहित्य से दूर रहनेवाला मनुष्य, मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। इसी पर भर्तृहरि का कथन है –

'साहित्य संगीत कला विहीनः, साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः॥'

4. काव्य की प्रेरणा :

साहित्य (काव्य) की रचना का हेतु साहित्य की प्रेरणा कहा जा सकता है। प्रेरणा और प्रयोजन को प्रायः एक ही अर्थ में प्रयोग कर देने के कारण उलझने उत्पन्न होती हैं। प्रेरणा का सम्बन्ध उस व्यक्ति, घटना, वस्तु या दृश्य से रहता है जो रचनाका को उसके कर्म में प्रवृत्त करता है। प्रयोजन से तात्पर्य होता है काव्य या साहित्य की रचना के उद्देश्य से उसके प्राप्त होनेवाले फल या लाभ से। प्रेरणा की स्थिति साहित्य। काव्य रचना के पूर्व होती है, जब कि प्रयोजन की उपलब्धि उस रचना के अनन्तर होती है।

आदि कवि वाल्मीकि के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन्हें काव्य–रचना की प्रेरणा क्रौंच – वध की घटना से प्राप्त हुई थी। पक्षी की व्यथित दशा देखा कवि का भावुक हृदय शोकानुभूति द्वारा उद्वेलित हो उठा और उनके मुख से अनायास ही छन्दोबद्ध दो पंक्तियाँ निकल पडी, जो विश्व साहित्य का आदि श्लोक बन गई। विलपती हुई क्रौंची को लक्ष्य करके महर्षि ने निषाद से इस प्रकार कहा, ''काममोहित पक्षी का वध करनेवाले निषाद, तुझे कदापि शान्ति की प्राप्ति नहीं होगी।''

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीस्समाः।

यत्क्रौंचमिधुनादेकमवधीः काम मोहितम्॥

अपने इस अनापास उच्चरित श्लोक पर विचार करते हुए महर्षि वाल्मीकि ने अपने शिष्य भरद्वाज से कहा ''शोक व्यथित मेरे मुँह से यह वाक्य निकल पडा। जो छन्दोबद्ध चार चरणों में अबद्ध है। अतः मेरा यह श्लोक रूप आबद्ध काव्य रूप या यश रूप होना चाहिए।''

शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा।

महर्षि वाल्मीकि के हृदय का श्लोक उनकी वाणी द्वारा उच्चरित होकर श्लोक रूप (यशरूप) हो गया। अब प्रश्न यह है कि उक्त 'मा निषाद ..... काम मोहितम' श्लोक की

प्रेरणा का स्रोत क्या है ? क्रौंच वध की घटना अथवा कवि की शोकानुभूति ? स्पष्टत: घटना और शोकानुभूति दोनों ही प्रेरणा - स्रोत कहे जाने चाहिए। घटना के अभाव में शोकानुभूति नहीं होती और अनुभूति के अभाव में घटना प्रभावशून्य हो जाती है।

नित्य जीवन में अनेक घटनाएँ होती रहती हैं, परन्तु, प्रेरक अनुभूति विरली घटनाओं द्वारा ही होती है। अतएव घटना की मार्मिक अनुभूति ही साहित्य (काल) का प्रेरणा - स्रोत बन जाती है। कविकुल गुरु कालिदास का प्रेरण-स्रोत स्वयं उनका प्रिया-वियोग था।

जीवन मूल - प्रेरक शक्ति आत्म-चेतना है और सौन्दर्यानुभूति समन्वित होकर कला की प्रेरण प्रदान करती है। उपनिषद काल इस विषय पर सर्वप्रथम व्यवस्थित चिन्तन उपलब्ध होता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में तीन ए,णाओं - पुत्रेषणा, वित्तेषणा एवं लोकेषणा को जीवन की मूल प्रेरणा माना गाया है। पुत्र, घन और यश की चाह को जीवन की मूल प्रेरणाएँ मानते हुए उपनिषदों में लिखा गया है कि ब्राह्मण इन एषणाओँ से उत्पर उठ कर त्याग का जीवन व्यतीत करता है। कालान्तर में आचार्यों ने पुरुषार्थ चतुष्टय - अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष को जीवन की प्रेरणाएँ बताया। भरत, भामह, वामन, रुद्रट, कुन्तक, विश्वनाथ, मम्मट और पण्डितराज जगन्नाथ आचार्यों ने काव्य की प्रेरणा के सम्बन्ध में अपने - अपने विचार प्रस्तुत किये।

भारतमुनि के अनुसार काव्य - रचना के मूल में दृष्ट और अदृष्ट दोनों ही हेतु होते हैं। काव्य केवल मनोरंजन की सामग्री नहीं है। वह धार्मिक, नैतिक और दार्शनिक ज्ञान की शिक्षा एवं काचरों को साहस, परिजनों को उत्साह, शोकार्तों को सांत्वना, उद्विग्न- चित्तावालों को विश्रान्ति काव्य-प्रेरणा जन को सम्मान एवं द्रव्य की प्राप्ति आदि के लिए एक अद्भुत साधना है।

भरत का मन्तव्य द्रष्टव्य है। वह चतुर्वर्ग की सिद्धि को काव्य का हेतु मानते हैं। अन्य आचार्यों के मत प्राय: चतुर्वर्ग की सिद्धि मैं अन्तर्गत हो जाते हैं। वामन ने कीर्ति-प्रीति हेतुत्वात कहा, भामह ने धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैथक्षण्यम कलासु कहा, प्रीति करोति कीर्ति च साधु काव्य निवेषणम् कह कर थोडे से फेर के साथ भरत के मत का समर्थन कर दिया। रुद्रट ने यश - प्राप्ति की इच्छा को प्रमुखता प्रदान की। कुन्तक काव्यामृत रसास्वादन चतुर्वर्ग की प्राप्ति से बढ़ कर मानते हैं। अन्य आचार्य भी पुरुषार्थ चतुष्टय की सीमाओं के बाहर नहीं जाना चाहते हैं। कालिदास यश: प्राप्ति अथवा लोक को काव्य- रचना की प्रमुख प्रेरक शक्ति मानते हैं। बाणभट्ट ने भी प्राय: यही बात कही है। उन्होंने कादम्बरी के आमुख में गुणी एवं विद्वान के रूप में सम्मिलित होने की इच्छा (एषणा) को काव्य का प्रेरक बताया है।

हिन्दी के प्रमुख विद्वान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी और डॉ. नगेन्द्र भी चतुर्वर्ग की सीमाओं को पार नहीं कर सके। इनके विचार से सुख – प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना जीव का सहज स्वभाव है और वस्तुत: सुख की प्राप्ति ही काव्य – रचना का मूल उद्देश्य है।

अन्य विद्वानों ने भी सौन्दर्यानुभूति के दार्शनिक पक्ष को लेकर इस विषय पर विवेचन किया है। इन के मतानुसार आनन्दानुभूति न कि सुख की कामना, काव्य की एक मात्र प्रेरक शक्ति है।

उक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं हम कह सकते हैं कि संस्कृत और हिन्दी के आचार्यों के मतानुसार आत्माभिव्यंजना, अनुभूति और आत्मविस्तार काव्य/ साहित्य की प्रेरणा है। सारांश रूप में काव्य/ साहित्य की प्रेरणा इस प्रकार कही जा सकती है –

(i) आनन्द की प्राप्ति

(ii) शक्ति की प्राप्ति

(iii) समज का हित – साधन

(iv) सौन्दर्यानुभूति द्वारा प्राप्त होनेवाले आनन्द का प्रकाशन

(v) साभिप्राय आत्माभिव्यक्ति

युग–विशेष के समस्त कवि युगीन साहित्यिक आन्दोलन की धारा में नहीं बह जाते हैं। वे भिन्न स्रोतों में काव्य – रचना की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। परान्त: सुखाय काव्य–रचना में प्रवृत्त होना तथा प्रगति एवं प्रयोग के युग में मैथिलीशरण गुप्त द्वारा राम–भक्ति का गायन करना इसके उदाहरण हैं। काव्य की प्रेरणाओं के सम्बन्ध में सार्वभौम नियम–निर्धारण का प्रयत्न काव्य की आत्मा को भौतिक नियमों में बाँधने का प्रयत्न है।

5. साहित्य/ काव्य का प्रयोजन :-

महर्षि वाल्मीकि का शोक श्लोक रूप में पल्लवित हुआ – 'श्लोक: श्लोकत्वमागत:।'

महर्षि वाल्मीकि की रामायण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी गुणों से समन्वित बताई गई है।

कामार्थ गुण संयुक्तं धर्मार्थ गुणविस्तरम्।

समुद्रमिव रत्नाढ़यं सर्वश्रुति मनोहरम्॥

भगवान ब्रह्मा ने महर्षि वाील्मीकि से पुण्यप्रद, मनोहर तथा श्लोक समन्वित रामायण रचना करने को कहा – 'कुरु रामकथां पुणयां श्लोक बद्धां मनोरमाम्।'

काव्य के प्रयोजन पर आचार्य कवि, विचारक आदि ने अपना – अपना मत प्रस्तुत किया, इस सन्दर्भ में आचार्य मम्र का कथन सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध है –

काव्यं यशसेर्थ कृते व्यवहार विदे शिवेतारश तथे।

सदयः परनिवृत्तये कान्ता सम्मित तथोपदेरायुजे॥

अर्थात् यश की प्राप्ति, सम्पत्ति का लाभ, सामाजिक व्यवहार की शिक्षा, रोगादि विषत्तियों का नाश, तुरन्त ही उच्च कोटि के आनन्द का अनुभव और प्रेयसी के समान उपदेश देने के लिए, काव्य–ग्रन्थ उपादेश देने के लिए, काव्य– ग्रन्थ उपादेय (प्रयोजनीय) है।

6. हिन्दी कवियों का मन्तव्य :

हिन्दी कवियों में काव्य–प्रयोजन सम्बन्धी गोस्वामी तुलसीदास का यह कथन बहुत प्रचलित है –

कीरति भनिति भूति जलि सोई।

सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

* * *

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं।

सो भ्रम वृथा बाल कबि करहीं॥

इस सम्बन्ध में कवि मैथिलीशरण गुप्त का कथन है –

जो अपूर्ण कला उसी की पूर्ति है,

हो रहा है जहाँ जो हो रहा,

यह हम ने कहा तो क्या कहा।

किन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ,

व्यक्त करती है कला यही यह यहाँ।

उस में उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

रामधारी सिंह दिनकर का कथन है – ''कविता का काम पाप और पुण्य के ज्ञान को विस्तृति प्रदान करना है, लोगों में यह उत्तजना जगाना है, जिस से कर्म उनके लिए अनिवार्य हो उठे। वह उनके भीतर अनुभूति उठाती है जिससे वे अपना कर्तव्य समझ सकें। कविता मनुष्य को उस अवस्था में ले जाकर छोड देती है, जहाँ उसे अपना निर्णय स्वयं करना है''।

7. उपसंहार :

भारतीय मनीषा के अनुसार साहित्य/ काव्य के प्रयोजन निम्न लिखित प्रकार है।

1. आनन्दानुभूति
2. यश की प्राप्ति
3. अर्थ (सम्पत्ति) की प्राप्ति
4. लोक-हित; लोक – रंजन
5. व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति
6. कान्ता सम्मित उपदेश
7. युगबोध की प्राप्ति

काव्य समाज सापेक्ष है। काव्य-प्रयोजन या अर्थ की प्राप्ति व्यवहार ज्ञान, श्विवेतर क्षय, रस या आनन्द की प्राप्ति, उपदेश, चतुर्वर्ग की सिद्धि तथा कला- वैचक्षण्य, दु:खी, भ्रमित एवं संतप्तों को शान्ति प्रदान करा आदि हैं। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार काव्य प्रणयन स्वान्त: सुखाय होने पर भी, श्रीराम का प्रणायन शील, शक्ति और सौन्दर्य है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र.2. भारतीय साहित्य के सामाजिक स्वरूप की चर्चा कीजिए, साहित्य और जीवन का सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित
3. कवि: अपने समय का प्रतिनिधि
4. शरीर आत्मा के प्रतीक
5. साहित्य–परिवर्तन शील
6. समाज सुधार
7. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। मनुष्य का मस्तिष्क समाज के ही आधार पर निर्मित होता है। समाज का आधार और मानव का मस्तिष्क साहित्य है। साहित्य के सम्बन्ध में एक पाश्चात्य विद्वान का कथन है, "Literaterse is the grain of humanity."मानव–समाज के अनुभव, विचार एवं आकांक्षाएँ साहित्य में समाहित रहती हैं। साहित्य द्वारा ही हमारा अपने पूर्वक मनीषियों, महर्षियों एवं युगनिर्माताओं से परिचय होता है, आज हम आदि कवि वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, व्यास एवं तुलसीदास का परिचय साहित्य का अध्ययन करके ही प्राप्त करते है। न्यूटन, प्लेटो, अरस्तु आदि प्रसिद्ध व्यक्तियों की कृतियों के अध्ययन से ही आज हमारी ज्ञान की अभिवृद्धि होती है। साहित्य और समाज का महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। साहित्यकार समाज का प्राण होता है।

साहित्य समाज के उत्सान में महत्वपूर्ण सहायक सिद्ध होता है। जिस प्रकार शरीर की उन्नति जलवायु, भोजन, प्रकाशादि पर आधारित है, उसी प्रकार मस्तिष्क की उन्नति साहित्य पर आधारित है। मस्तिष्कि के अविकसित रहने से समाज की उन्नति में बाधा होती है। सभ्यता का विकास हो नहीं पाता और ज्ञान का प्रसार अवरुद्ध हो जाता है। अन्ततोगत्वा साहित्य के अभाव में समाज की पूर्ण क्षति होती है।

2. साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित :

साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित हैं। जनता कीचित्तवृत्तियों का प्रबाव तत्कालीन साहित्य पर पडता है। वीरगाथा काल में देश की धार्मिक, राजनीतिक एवं अर्थिक स्थिति तत्कालीन साहित्य पर ज्ञात होता है। भविष्यकाल में हिन्दी जनता के हृदय में निराशा का संचार हो रहा था, उन पर अमानुषिक अत्याचार हो रहे थे, उनके समक्ष मन्दिर गिराये जाते थे और मूर्तियाँ तोडी जाती थीं और धर्म-ग्रन्थ जलाए जाते थे। उस वातावरण में भगवानन की शरण ही एक मात्र आधार था। भक्ति कालीन कविता पर इन सभी चित्तवृत्तियों का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। इसी प्रकार रीतिकाल तथा आधुनिक काल के साहित्य पर भी तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्टताया दिखाई देता है।

वस्तुतः वातावरण के अनुसार जीवन का विकास होता है। समाज के वातावरण से तुलसीदास जैसे महत्मा भी न बच सके। उनकी रचनाओं में सोलहवीं सदी का स्पष्ट छाप है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति समाज की भावनाओं, विचारों, रूढ़ियों एवं परम्पराओं को बीज रूप प्राप्त कर करे फूलता और फलता है तथा वे ही भावनाएँ, वे ही विचार वे ही रूढ़ियाँ उसके सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करती है। साहित्य पर इस प्रकार समाज अपना प्रतिबिम्ब डालता है और अपने अनुरूप बनाता रहता है। यह स्वाभाविक नियम सभी देशों, सभी कालों, सभी जातियों में निरन्तर अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करता रहता है।

3. कविः अपने समय का प्रतिनिधि :

कवि अथवा साहित्यकार अपने समय का प्रतिनिधि होता है। वह अपनी काव्य-प्रतिभा के द्वारा समाज की समस्याओं पर प्रकाश डालकर सामाजिक चेतना का कारक बनता है। वह समाज को शक्ति-सम्पन्न बना कर, उसके विकारों को दूर करके स्वस्थ एवं क्रियाशील बनाता है। वह रस की सृष्टि करके समाज को आनन्द भी प्रदान करता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता, कुरीतियों के प्रति घृणा एवं पराधीनता से उत्पन्न खिन्नता आदि व्याप्त हैं। आज का साहित्य आदिकाधिक व्यक्तिनिष्ठ होता जा रहा है। आज का प्रगतिवादी साहित्य जनता की भावनाओं के निकट अवश्य है। वर्तमान हिन्दी साहित्य भारतवासियों में जागृति उत्पन्न करनेवाला, राष्ट्रीय भाव भरनेवाला स्वतन्त्रता के लिए दुर्दमनीय इच्छा जागृत करनेवाला है।

साहित्य अनुभूति तथा भावना प्रदान है। सत्साहित्य से समाज तथा भावना प्रदान है। सत्साहित्य से शमाज तथा व्यक्तियों वा आत्मगौरव भाव दो दृढ़ होता है और आदर्श मार्ग पर चलना सिखाता है। वह समाज में एकता, प्रेम एव सद्भावना का संगीत भर देता है। साहित्य का शंखनाद जन-जन के वानों में पहुँचकर प्राण फूँक देता है। इसी कारण मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है -

अंधकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है।

मरा हुआ वह देश, जहाँ साहित्य बहीं है।

4. शरीर और आत्मा के प्रतीक :

साहित्य और जीवन का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। वे परस्पर शरीर और आत्मा की तरह सम्बद्ध हैं। किसी भी देश, जाति, अथवा समाज की सभ्यता तथा संस्कृति का परिचय साहित्य के द्वारा प्राप्त होता है। साहित्यकार अपने समय का प्रतिनिधि है। वह अपनी रचनाओं में युग की समस्त जटिलता ओं और समस्याओं को जीवन से ग्रहण कर हमारे सामने प्रस्तुत करता है। कवि की अभिव्यक्ति के मार्ग विविध रूपों में होते हैं। साहित्यकार जीवन और समाज से प्रेरणा प्राप्त कर कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबन्ध कविता आदि के माध्यम से अपनी भावनाएँ व्यक्त करता है। कलाकार का भावुक हृदय सुख-दु:ख से द्रवीभूत हो उठता है। साहित्य का सृजन करके वह शान्ति का अनुभव करता है और हृदय का भार कम करलेता है। उसके साहित्य निर्माण से सामाजिक शान्ति प्राप्त होती है।

5. साहित्य - परिवर्तनशील :

साहित्य सदैव समय के साथ परिवर्तित होता रहता है। मानव जीवन के उत्थान- पतन के साथ उसका भी उतार - चढ़ाव होता है। अनेक साहित्यिक ग्रन्थ जो अपने समय के महान माने जाते थे, आज के समाज में उनका उतना अधिक मूल्य नहीं क्यों कि सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आया है। शरतचन्द्र और प्रेमचन्द के उपन्यास 'बडी दीदी', 'देवदास', 'गोदान' आदि में तत्कालीन सामाजिक कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास गहराई तक चित्रित हुई हैं। गोदान से उस समय के कृषकों की दीन दशा का चित्रण उपस्थित हो जाता है। प्रेमचन्द के साहित्य में ग्रामीण वातावरण एवं किसान मजदूरों का हृदय स्पर्शी चित्रण अंकित हुआ है।

6. समाज - सुधार

साहित्यकार अपनी रचनाओं द्वारा समाज-सुधार की भूमिका का भी निर्वाह करता है। वह जनता के जीवन का साक्षी है। साहित्यकार समाज की कुरीतियों को दूर करके उनके स्थान पर में चेतना भर कर समाज को क्रियाशील बनाता है। मध्य युग में निराशापूर्ण हिन्दू जनता में साहित्यकारों ने चेतना भरने का प्रयास किया था। राम और कृष्ण के लोफरक्षक रूप एवं लोकरंजक रूप प्रस्तुत कर तुलसी और सूर ने तत्कालीन जनता को आत्मविश्वास प्रधान किया, सुभद्रकुमारी चौहान ने अपनी कविता 'झाँसी की रानी' रचना के द्वारा भारतीयों को जागृत किया। मानव-जीवन की समस्त भावनाएँ, विकृतियाँ और मानव जाति का हित साहित्य में प्रतिबिम्बत होता रहता है।

7. उपसंहार :

वर्तमान युग शोषण एवं आर्थिक संकट का युग है। इसलिए साहित्याकार सजग होकर कविता में वेदना, करुणा, निराशा आदि भावों की व्यंजना करते हैं। कविता में जर्जर मानव का जीवन अंकित होता है -

''हरियाली में देखे हैं
जिसने भूखे सूखे किसान
वह कैसे गाये प्रणय गान!''

आज का साहित्याकार जाग कर जीवन के प्रत्येक पल को वह पैनी दृष्टि से देखता है। दीन-दुखियों एवं किसानों की दशापर आँसू बहानेवाले कवि का कथन है -

''अरी हृदय को थाम महल के
लिए झोंपडी बलि होती है।
देख कलेजा फाड कृषक
दे रहे हृदय - शोणित की धाराएँ।
बनती ही उन पर जाती हैं
वैभव की ऊँची दीवारें।''

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र.3. भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

रूपरेखा :-

प्रस्तावना

1. संस्कृत साहित्य को भारतीय साहित्य कहा जाय अथवा नहीं !
2. क्या पालि, प्राकृत, और अपभ्रंश के साहित्य को भारतीय अथवा राष्ट्रीय साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है ?
3. भारत में अनेक भाषाओं के साथ अनेक भाषा परिवारों की भी भाषाएँ बोली जाती हैं।
4. भारत की राष्ट्रीयता
5. संस्कृत साहित्य
6. काल विभाजन की समस्या
7. जातियों तथा भाषा की समस्या
8. अन्य समस्याएँ
9. उपसंहार

प्रस्तावना :-

भाषा के बिना साहित्य का व्यक्तित्व नहीं और मानव सागत के बिना भाषा का अस्तित्व नहीं। डॉ. रामविलास शर्मा इस सम्नब्ध में कहते हैं – ''भारत के सामाजिक विकास की प्रमुख समस्या है, विभिन्न भाषाएँ बोलनेवाली जातियों के निर्माण की समस्या।'' भारत में बहुजातीय राष्ट्रीयता का विकास मानव–समाज की विशिष्ट उपलब्धि है। बहुजातीय राष्ट्रीयता के विकास की समस्या समाज–शास्त्र की महत्त्वपूर्ण समस्या है। किसी भी भाषा के साहित्य का निर्माण अन्य भाषाओं के साहित्य से नितान्त पृथकता की अवस्था में नहीं होता है और न उसे अन्य भाषाओं के इतिहास से अलग करके देखा या लिखा जा सकता है।

कोई भी इतिहासकार अथवा अन्य देशी, मार्क्सवादी अथवा पूंजीवादी, जब भारतीय साहित्य की रचना करेगा तो उसे विभिन्न भाषाओं के साहित्य के परस्पर सम्बन्धों पर ध्यान देना होगा। यदि उसे एक भाषा विशेष के साहित्य का इतहिास लिखना होगा तो भी उसे अन्य

भाषाओं के साहित्य से इस के सम्बन्ध पर विचार करना होगा। भारत की किसी भी भाषा के साहित्य का इतिहास अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही सही ढ़ंग से लिखा जा सकता हैं। हिन्दी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखते समय पहले तो पूर्ववर्ती प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य के विकास का विवेचन करना होगा, तदुपरान्त व्रजभाषा, अवधी, बन्देली, कन्तौजी आदि के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करना आवश्यक होगा।

समस्याएँ :-

1. संस्कृत के साहित्य को भारतीय साहित्य कहा जाय अथवा नहीं -

ऋग्वेद भारतीय साहित्य का आदि ग्रन्थ माना जाता है। इस के रचनाकार, आर्यावर्त से सम्बन्धित थे – यानी उत्तर भारत के थे। महर्षि व्यास ने वेदों का परिमार्जन किया था। तब ऋग्वेद अखिल भारतीय कहा जा सकता है?

दूसरी बात यह है कि संस्कृत थोडे से पढ़े-लिखे लोगों की भाषा थी। समान्य जनता न संस्कृत बोलती थी और न पढ़ती थी। संस्कृत लौकिक एवं परिनिष्ठित संस्कृत में लिखे जानेवाले साहित्य को संकुचित क्षेत्र का संकुचित आधारवाला साहित्य कहा जाना चाहिए।

2. क्या पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य को भारतीय अथवा राष्ट्रीय साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है?

संस्कृत साहित्य के पश्चात पालि साहित्य का स्थान आता है। यह साहित्य प्राय: बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। क्या एक धर्म विशेष से सम्बद्ध साहित्य को राष्ट्रीय था भारतीय साहित्य कहा जायगा?

पहले तो प्राकृत के अधिक रूप प्रचलित थे। अत: किसी एक प्राकृत के साहित्य को राष्ट्रीय अथवा भारतीय साहित्य कहग अनुपयुक्त है। प्राकृत मैं साहित्य रचना साहित्य प्राय: जैन धर्म से सम्बद्ध है। अत: प्रकृत में रचित साहित्य को भी राष्ट्रीय अथवा भारतीय साहित्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस सन्दर्भ में भाषा वैज्ञानिकों ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण शंका हठाई। उनका कहना है कि प्राकृत वास्तव में लोक – भाषा थी।

अपभ्रंश में रचित साहित्य की भाषा पर्याप्त परिनिष्ठित है। विद्यापति ने एक ही समय में मैथिली में पदावली लिखी और अपभ्रंश मैं कीर्तिलता।

कोई भारतीय आधुनिक भाषा राष्ट्रीय नहीं है। तब हम किसी भारतीय भाषा को राष्ट्रीय एवं भारतीय कहें और उसी के अनुसार किस भाषा में रचित साहित्य को राष्ट्रीय या भारतीय साहित्य कहें ?

स्वाधीनता – प्राप्ति से पहले तथा स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने प्रयत्न किये जाते रहे फलत: हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत हुई। अन्य भारतीय आधुनिक भाषाओं – पंजाबी, मराठी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु, बंगला आदि भाषाओं में भी राष्ट्रीय भावना अवश्य व्यक्त हुई है।

संस्कृत भाषा – काल में राष्ट्रीय –साहित्य की परिकल्पना की जा सकती है, क्यों कि उस युग में देश के विभिन्न भागों के पण्डितजन संस्कृत का प्रयोग करते थे। उस युग में भारत राष्ट्र की कल्पना कर सकते हैं, थानी उस युग में कम – से – कम पंडितजन प्रयुक्त संस्कृत के सन्दर्भ में राष्ट्रीय एकता की भावना थी। आधुनिक भाषाओं के जन्म वन समय 10 वीं शताब्दी माना जाता है और उस समय राष्ट्रीय भावना का प्रश्न ही नहीं था। हिन्दी आज राष्ट्रीभाषा के रूप में पूर्णतया स्वीकृत है। हर साल 14 सितम्बर को 'हिन्दी दिवस' मनाया जाता है।

कुछ लोगों का कहना है कि अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारत में राष्ट्रीय भावना का अभाव था। भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद ही यहाँ राष्ट्रीय भावना का जागरण हुआ। भारतीय साहित्य के इतिहास का अर्थ होगा अंग्रेजी और संस्कृत में भारतवासियों द्वारा लिखे गये साहित्य का इतिहास।

3. भारत में अनेक भाषाओं के साथ अनेक भाषा परिवारों की भी भाषाएँ बोली जाती हैं :

भारत में कई भाषा परिवार परस्पर भिन्न है। आर्य भाषा – परिवार इण्डो–यूरोपीयन परिवार की शासका है। द्रविड भाषा – परिवार आदि परस्पर भिन्न है। यदि भाषा को राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता का आधार मानते हैं, तो हमारे सामने एक अन्य समस्या उत्पन्न होती है कि एक ही भाषा – परिवार की भाषाएँ बोलनेवाले लोग राष्ट्र के रूप में संगठित हों, यह आवश्यक नहीं। अंग्रेजी विभिन्न देशों के निवासी प्रयुक्त करते हैं, परन्तु, वे एक ही राष्ट्र के रूप में संगठित नहीं है। इंगलैण्ड और अमेरिका के निवासी इसका सब से अधिक ज्वलन्त उदाहरण है। जर्मनी, आस्ट्रिया, डेनमार्क, हालैण्ड, नार्वे, स्वीडन आदि देशों में जर्मन शाखा की भाषाएँ बोली जाती

हैं, पर वे सब अलग –अलग हैं। फ्राँस, स्पेन, इटली, रूमानिया में लैटिन शाखा की भाषाएँ बोली जाती हैं। पर वे सब एक राष्ट्र न हो कर अलग – अलग राष्ट्र हैं। फिर अनेक विभिन्न परिवारों की भाषाएँ जहाँ बोली जाती हों, वहाँ भारत जैसे देश में राष्ट्र की कल्पना कैसे की जा सकती है?

भारत में बोली जानेवाली भाषाओं का एक अन्य परिवार है – नाग (चीनी, तिब्बती) परिवार। मणिपुर नागालैंड, अरणाचल, असम के कुछ क्षेत्रों आदि में इस परिवार भाषाएँ बोली जाती हैं। यह भाषा – परिवार काफी पुरीना जमाने में इस भाषा का प्रयोग कहीं विस्तृत क्षेत्र में होता था। इन भाषाओं में साहित्य रचना बहुत कम हुई थी।

4. भारत की राष्ट्रीयता :

राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र के सन्दर्भ में विचार करते समय प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस क्षेत्र के निवासी परस्पर किस प्रकार व्यवहार करते हैं और उनके बीच कैसे सामान्य परम्पराएँ विकसित हुई हैं? इन दो दृष्टियों से विचार करने पर हमारे सामने भारत की मूलभूत एकता मुखर उठती है और भारत को एक राष्ट्र के रूप में स्वीकार करते हुए कोई आपत्ति नहीं है। भारत की सांस्कृतिक एकता को प्रामाणित करने के लिए इतना पर्याप्त है कि भारत के चार कोनों में चार धाम भारतीय के लिए समान श्रद्धा के पात्र हैं। यहाँ की सप्त परियों एवं सप्त नदियों का स्मरण प्रत्येक भारतवासी समान आस्था के साथ करता हैं। भारत भूमि हिमालय और समुद्र के बीच स्थित है और उस पर विभिन्न जातियों और वर्णों के लोग मिलकर रहते हैं। भारत वर्ष की एकता और पवित्रता का स्वर प्रतिनिधि साहित्याकारों की वाजी में प्रखर उठती है –

भलि भारत भले कुल जन्य समाज शरीर भलो लहिके।
कारण तजि कै परुष हिम मारूत धाम सहि कै॥

–गोस्वामी तुलसी दास

भारत समुदायम् बाल्ग वे। बाल् ग बाल् ग,
भारत समुदायम् बाल ग वे। जय जय जय।

5. संस्कृत साहित्य :

वैदिक संस्कृत आर्यों की भाषा कही जाती है। आर्य शब्द उन तमाम गण समाजों के लिए प्रयुक्त होता है जो एक – दूसरे से मिलती – जुलती भाषाएँ बोलते हैं। ये भाषाएँ परस्पर मिलती

– जुलती थीं, परन्तु एक रूप नहीं होंगी। यूनान आदि में बोली जानेवाली भाषाओं और और उनके बोलने वालों के उदाहरण के लिए समाज गण – समाज एक ही भाषा बोलते हो, ऐसा नहीं कहा जा सका।

संस्कृत अपने प्राचीन वैदिक रूप में भरत गण की भाषा है। वैदिक काल में ही भरत गण की शक्ति के कारण उनकी भाषा विभिन्न गण – समाजों के बीच व्यवहार में आने लगी थी। बिन-नन भाषाएँ बोलनेवाले थे समाज परस्पर विनिमय और सम्पर्क के लिए भारत गण की भाषा का में लाते थे। इसी भाषा को पाणिनी ने अपने व्याकण द्वारा अनुशीलन किया और उस मानक रूप देकर संस्कृत बनाया। संस्कृत मूलत: भारत गण की भाषा थी अै संस्कृत साहित्य अधिकांशत: हिन्दी भाषा जाति के पूर्वजों द्वारा रचित है।

भारत का विकास एक राष्ट्र के रूप में हुआ। चरे गंधार और केरल उसके प्रमुख केन्द्र थे, संस्कृत का एक केन्द्र सुदूर उत्तर गंधार में था। जहाँ के पाणिनी ने महान व्याकरण की रचना की। दूसरा केन्द्र सुदूर दक्षिण केरल में था, जहाँ के शंकराचार्य ने आखिल भारतीय स्तर पर वेदान्त दर्शन का प्रचार किया। केवल इन दो नामों से संस्कृत भाषा में उपलब्ध संस्कृति का अखिल भारतीय स्वरूप प्रकार होता है। इसके साथ वाल्मीकि और व्यास उन जनपदों के कवि थे। इसके बाद कालिदास और भवभूति का समय आता है। ये दोनों कवि हिन्दी प्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्र से सम्बन्धित थे। इसी प्रकार पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का साहित्य और उनके काव्य हमारे सामने आते हैं। जातीयता के बिना राष्ट्रीयता का अस्तित्व सम्भव नहीं है। अत: संस्कृत साहित्य हमारा राष्ट्रीय अथवा जातीय साहित्य माना जाना चाहिए। इस देश को राष्ट्र रूप में सुगठित करने, सांस्कृतिक स्तर पर राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करने में उन जनपदों ने निर्णायक भूमिका का निर्वाह किया, जो अब हिन्दी प्रदेश में हैं। संस्कृत के साथ पालि, प्राकृत आदि को राष्ट्रीय साहित्य मानना चाहिए और भारतीय साहित्य के इतिहास में उनका विवेचन उचित भी है और आवश्यक भी।

6. काल-विभाजन की समस्या :

साहित्य का इतिहास लिखनेवाले प्राय: ती कालों की चर्चा करते हैं – (1) प्राचीन काल (2) मध्यकाल और प्राचीन काल का अन्तिम चरण है। क्रमश: गण के स्थान पर कुटुंब उत्पादन के आधार बन जाते हैं। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में वर्णव्यवस्था प्रकट हो जाती है।

ब्राह्मणोस्य मुखमासीत बाहूराजन्यः कृतः।

उरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याग्ं शूद्रोअजायत॥

सिन्धु घाटी की सभ्यता को द्रविड सभ्यता कहा जाता है और वह वेदों से पहले की मानी जाती है। अतः इतिहास – लेखन के समय द्रविड सभ्यता की प्राचीनता पर विचार करना उचित है। सिन्धु घाटी व्यवस्था में नगर विकसित सामन्ती सभ्यता के द्योतक हैं। सिन्धु घाटि के नगर सामूहिक उत्पादन और विवरण वाले गण समाजों के केन्द्र नहीं हैं। वैदिक सभ्यता और सिंधु घाटी की सभ्यता दोनों गण – व्यवस्था सभ्यता के अन्तिम चरण और विकसित सामन्ती सभ्यता का द्योतन करती हैं। अतः वैदिक सभ्यता और सिन्धु घाटी सभ्यता का जो भी समय निर्धारित किया जाय, वह होगा गण – व्यवस्थावाले प्राचीन युग का अवसान काल ही। भारत में गण –व्यवस्था के अवशेष आदिवासी प्रदेशों में अब भी अब भी देखे जा सकते हैं और अन्य प्रदेशों के कुछ भागों में सामन्ती अवशेष हैं। पर भारत की मुख्य व्यवस्था पूँजीवादी है। महात्मा बुद्ध ने पशुबलि का विरोध किया था। यह सर्वमान्य तथ्य है। उस समय वर्ण – व्यवस्थावाली सामंती सभ्यता विद्यमान थी। संस्कृत, प्राकृत, पालि आदि में रचा हुआ साहित्य सामंती समाज की देन है और उसको मध्यकालीन साहित्य कहा जा सकता है।

प्राचीन काल के आरम्भ की भाँति आधुनिक– काल का प्रश्न भी अनुत्तरित है। मार्क्स के विचारों पर साहित्य का निर्माण हुआ है। इस के दो वर्ग हैं। एक वर्ग के अनुसार अंग्रेजों ने बारत में सामन्ती व्यवस्था को जन्म दिया। दूसरे वर्ग के अनुसार अंग्रेजों ने भारत में पूँजीवादी व्यवस्था को जन्म दिया। दोनों वर्ग भारत में सामन्ती व्यवस्था की समाप्ति हुई। भारत में जातियों का निर्माण परम्परागत है, जब भारत का व्यापार अंग्रेजों की अपेक्षा अधिक विकसित था।

7. जातियों तथा भाषा की समस्या :

भारत में आधुनिक जातियों का निर्माण कब हुआ। अथवा उनका निर्माण क्या है, क्यों कि इसी के आधार पर काल – निर्माण में बहुत सहायता मिल सकती है। आधुनिक जातियों के निर्माण –काल का निर्णय करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि व्यापार का विकास यहाँ के प्रदेशों में कब इतना हुआ कि उस से घरेलू प्रादेशिक बाजार निर्मित हुए हों। पबूँजीवादी व्यवस्था का आधार बडे पैमाने व्यापार होता हैं। छोटे – छोटे बाजारों को मिला कर बडे बाजार बनाने का काम व्यापारी वर्ग करलेता है। इस प्रक्रिया के साथ जातीय भाषा को जोडने की

समस्या दूसरी है। जातीय भाषा के निर्माण में एक से अधिक भाषाएँ योगदान करती हैं। इन में से कोई एकजातीय भाषा के रूप में स्थापित हो जाती है। अन्य जनपदीय भाषाएँ उस जातीय भाषा की तुलना में उपभाषाएँ रह जाती हैं। खडी बोली, व्रजभाषा, बुन्देली, बंगला, कन्नैजी आदि हिन्दी की उपभाषा ओँ के रूप में रह गई हैं।

कबीर आदि सन्तों, जायसी आदि सूफियों तथा सूरदास, तुलसीदास, रसखान, मीरा बाई आदि भक्तों की लिखी हुई कविताएँ, उनका साहित्य आज भी लोकप्रिय हैं। हिन्दी प्रदेश में दूर - दूर तक सूरदास और तुलसीदास जैसे कवियों की भूमिका इसी परिप्रेक्ष्य में समझी जा सकती है। तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना अवधी में की। वह अवध के बाहर भी हिन्दी प्रदेश के जनपदों में पढ़ा जाता है। वह नगर और ग्रामीणों में लोकप्रिय है।

व्रजभाषा साहित्य की भाषा के रूप में बडे पैमाने पर प्रयुक्त होती है। यह साहित्य व्रज के बाहर अन्य जनपदों में भी लोकप्रिय है। व्रजभाषा में रचे हुए साहित्य का प्रभाव भारत की अनेक भाषाओं और उनके साहित्य पर पडा। व्रजभाषा एक ओर हिन्दी जाति के विकास में अपनी भूमिका का निर्वाह करती है, तो दूसरी और वह राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय साहित्य की प्रगति में भी सहायक होती है।

8. अन्य समस्याएँ :

राष्ट्र के अस्तित्व के लिए एक ही भाषा का व्यवहार आवश्यक नहीं है। संसार के अधिकांश राष्ट्र बहु जातीय हैं और अधिकांश राष्ट्र बहु भाषीय हैं। हिन्दी भारत की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। राष्ट्रीय एकता का अर्थ अनेक भाषाओं का सह-अस्तित्व है, उनका परस्पर सहयोग है। हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य की कुछ निजी और विशेष समस्याएँ हो सकती हैं।

यह स्थिति प्रत्येक भाषा और उसके साहित्य के सन्दर्भ में हो सकती है। भारतीय साहित्य के अध्ययन सम्बन्धी समस्याओं के मूल कारण हैं - भाषा को समाज के विकास के साथ न जोडना और साहित्य को सामाजिक परिस्तियों से सत ही रूप में सम्बद्ध कर देना, साहित्य के इतिहास का अध्ययन केवल काल - खण्डों में विभाजित करके देखा जान, क्यों कि इस से अध्ययन का क्षेत्र सीमित हो जाता है और ब्योरे आसानी से पकड में आ जाते हैं।

द्रविड भाषाएँ आर्य भाषाओं की अपेक्षा प्राचीन मानी जाती हैं। अपभ्रंश काल समाप्त होते ही, देशी भाषाओं का उदय होता है, उस समय भारत पर तुर्क आक्रमण होते है और तुर्क साम्राज्य स्थापित होता है और अपभ्रंश से भिन्न देशी भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है।

ऋग्वेद की सभ्यता और सिन्धु घाटी की सभ्यता में एक साम्य है कि दोनों के केन्द्र नगर हैं, दोनों सभ्यताएँ आदिम गण समाजों की सभ्यताएँ नहीं है, तथा दोनों के केन्द्र उत्तर भारत में है। इन सभ्यताओं से पहले कौन सी भाषाएँ बोली जाती थीं और उन में किस प्रकार के साहित्य की रचना होती थी, इस की सामग्री प्राप्त नहीं है। तमिल भाषा का प्राचीनतम साहित्य सामन्ती सभ्यता का साहित्य है। गण-व्यवस्था से सम्बद्ध साहित्य ऋग्वेद में मिलता है। वैदिक भाषा मुख्यत: भरतगण की भाषा है और वैदिक काल में गण-समाजों के बीच सम्पर्क भाषा बन चुकी थी और उस में अनेक समफालीन गण-भाषाओं के तत्व समाहित हो गये हैं।

वैदिक - पौराणिक धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म का प्रसार एक अखिल भारतीय प्रक्रिया थी। इन तीनों धर्मों के केन्द्र उत्तर भारत में थे। ले जाने का संस्कृत थी। अत: तमिलनाडु के साहित्यकारों का संपर्क संस्कृत, पाली और प्राकृत से होना स्वाभाविक है। वैदिक युग के बाद संस्कृत का प्रसार हुआ, उसी समय प्राकृत के व्यवहार के प्रमाण मिलते हैं। संस्कृत प्राकृत तंत्र से अखिल इस तन्त्र से मुक्त होने पर ही जनपदीय अथवा देशी भाषाओं में साहित्य रचना का कार्य सम्पन्न हुआ होगा जिस समय साहित्य में संस्कृत और प्राकृत का व्यवहार होता था, उस समय संस्कृत और प्राकृत विभिन्न देशी भाषाओं के अस्तित्व की सूचना भी पुराने साहित्य में मिलती है।

'देश - भाषा' शब्द का प्रयोग प्रदेश विशेष की बोलियों के लिए किया जाता था। भरत ने सर्व प्रथम 'देश - भाषा' का प्रयोग नाट्य -शास्त्र में किया। देशी भाषाएँ अपभ्रंश से भिन्न प्रान्तीय बोलियाँ थीं और प्राचीन साहित्य में नाट्य शास्त्र, कामसूत्र, अर्थशास्त्र इत्यादि में इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। अपभ्रंश का उल्लेख छठी शताब्दी में मिलता है। देश- भाषा शब्द का उल्लेख इस से बहुत पुराना है। अपभ्रंश तथा हिन्दी के प्राचीन कवियों ने देश - भाषा शब्द का प्रयोग अपनी कविता की भाषा के लिए किया है।

देशी भाषाओं का अन्तर्विरोध भारतीय साहित्य के इतिहास के अध्ययन की बहुत महत्वपूर्ण समस्या है। इसके मूल में सामन्ती व्यवस्था है। देशी भाषाओं के अन्तर्विरोध अति

प्राचीन काल से आ रहे हैं। तमिल और मलयालम, मराठी और कन्नड, मराठी और गुजराती, बंगला और उडिया, प्राकृत और गुलेरी का कथन है, ''पुरानी अपभ्रंश संस्कृत और प्राकृत से मिलती है और पिछली पुरानी हिन्दी से अपभ्रंश कहाँ समाप्त होती है, इसका निर्णय कठिन है। पुरानी बंगला को राहुल सांकृत्यायन ने पुरानी हिन्दी अथवा मगही कहा। हिन्दी के बाहर भी हिन्दी की प्राचीन रचनाएँ मिलती हैं। हिन्दी भाषा में प्रारम्भिक रचनाएँ हिन्दी प्रदेश से बाहर महाराष्ट्र और दकन में होती दिखाई देती हैं।''

9. उपसंहार :

भारतीय साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते समय यह जानना आवश्यक है कि अमुक भाषा के उद्‌भव का समय क्या था और उसके साहित्य का माध्यम बनने में किन साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के कार्य किया था। कोई भाषा जिस समय साहित्य का माध्यम बने, उस समय को उसके उद्‌भव का समय मानना बहुत बडी भ्रान्ति है। भाषा को साहित्य की भाषा बनने में परिस्थितियों के अनुसार समय लगता है।

गण समाजों के बीच सामन्ती व्यवस्था के प्रसार केन्द्र उत्तर भारत में थे। इस व्यवस्था के साथ वैदिक, पौराणिक, बौद्ध, जैन धर्मों का प्रसार हुआ। संस्कृत, पालि और प्राकृत भाषाएँ क्रमश: इन तीन धर्मों से सम्बद्ध हुई। सामन्ती व्यवस्था तथा संस्कृत, प्रकृत भाषा तन्त्र के अन्तर्गत उत्तर भारत के अतिरिक्त तमिलनाडु सहित दक्षिण भारत भी था। इस लिए यह माना जाना चाहिए कि संस्कृत के साथ तमिलनाडु का सम्बन्ध सामन्ती व्यवस्थ के अभ्युदय काल में हुआ था।

वैदिक भाषा गण–व्यवस्था के अन्तिम चरण और सामन्ती व्यवस्था के प्रथम चरण की भाषा है। यह द्वितीय सहस्राब्दी ईसा पूर्व में बोलचाल की भाषा थी, जिस में समकालीन अनेक गण–भाषाओं के तत्त्वों का समाहित हो जाना सर्वथा स्वाभाविक था। प्रथम सहस्राब्दी पूर्व की लौकिक संस्कृत शिष्ट जनों की भाषा बन गई थी। उसके समानान्तर जनपदीय भाषाओं का व्यववहार होता था। प्राकृत बोलचाल की भाषा नहीं थी। उसका शब्द भण्डार, व्याकरण व्यवस्था मूलत: वही थी जो संस्कृत की थी। देशी भाषाएँ, अर्थात् संस्कृत एवं प्राकृत से भिन्न भाषाएँ जनपदीय कम से कम उतनी पुरानी हैं जितना पुराना भारत का नाट्य शास्त्र है।

सामन्ती व्यवस्था के हास के साथ देशी भाषाओं और संस्कृत – प्राकृत भाषा तन्त्र का अन्तर्विरोध तीव्र होता गया और वे उभर कर आने लगीं।

अन्य द्रविड भाषाओं की अपेक्षा तमिल साहित्य में पहले प्रतिष्ठित हुई। इसका विशिष्ट कारण है। तमिल की अपेक्षा मलयालम भाषा में प्राचीनता के अधिक लक्षण है। परन्तु साहित्य के रूप में प्रतिनिष्ठत होने में इसको अधिक समय लगा। इनके बाद कन्नड और तेलुगु में रचना का क्रम आता है। उच्च वर्ग देशी भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत और प्राकृत को सांस्कृतिक भाषाएँ मानता था और उन्हीं में साहित्य रचना का प्रोत्साहन प्रदान करता था। जिस समय जनपदीय भाषा तमिल में साहित्य रचना आरम्भ होती है, उस समय मलयालम, कन्नड, तेलुगु, व्रज, अवधी, कश्मीरी आदि भाषाएँ अस्तित्व में थीं।

देशी भाषाएँ परस्पर विकास में सहायक हुई। प्राकृत के समान अपभ्रंश दक्षिण भारत में नहीं पहुँच पाई। इसके दो कारण थे – (1) अपभ्रंश को प्रश्रय देनेवाले सामन्त प्राय: राजस्थान के थे तथा भि अनेक मतों के आचार्य बंगाल से लेकर गुजरात तक अपभ्रंश को प्रचार का माध्यम बनाते थे।

अपभ्रंश का ध्वनितन्त्र प्राकृत का है। इसका रूपतन्त्र अंशत: प्राकृत का और अंशत: देशीभाषाओं का था। यह अनेक भाषाओं का समाहार है। इन देशी भाषाओं में अवधी का उल्लेख करना आवश्यक है। इसके तत्व पूरब में दोहा कोश और पर्यागीत में मिलते हैं और पश्चिम में हेमचन्द के व्याकरण में उद्घृत पद्यों में मिलते हैं। देशी भाषाओं ने अपभ्रंश को बहुत बडी सीमा तक प्रभावित किया था।

लोक भाषाओं में रचे हुए अतिरिक्त लोकप्रिय साहित्य की अनेक परम्पराएँ अपभ्रंश में प्रकट हुई। अपभ्रंश पुरानी हिन्दी नहीं है और अपभ्रंश साहित्य का रचना काल हिन्दी साहित्य का आदिकाल नहीं है।

तुर्की द्वारा कोई युग – परिवर्तन नहीं हुआ। वे वहाँ की जातियों द्वारा आत्मसात करलिये गये। इसके बाद जिस समय आधुनिक जातियों का निर्माण होता है, उसी समय से समाज और साहित्य के इतिहास में आधुनिक – काल का आरम्भ माना जाना चाहिए। तथाकथित मध्यकाल वास्तव में आधुनिक काल का प्रथम चरण है। साहित्य के इतिहास के काल विभाजन का आधार समाज – व्यवस्था होनी चाहिए। पुरानी संस्कृति के अवशेष बहुत दिनों तक बने रहते हैं। इस से यह सिद्ध नहीं होता कि नये युग का सूत्रपात्र नहीं हुआ।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र. 4. हिन्दी साहित्य के इतिहास - लेखन की समस्या पर चर्चा कीजिए।

रूपरेखा

1. प्रस्तावना
2. आदिकाल
3. भक्तिकाल
4. रीतिकाल
5. आधुनिककाल
6. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के लिए दो वर्गों की सामग्री अपेक्षित होती है। इन में प्रथम वर्ग में कवियों की रचनाएँ आदी हैं। इन में शुद्ध पाठ और प्रक्षिप्त अंश बहुत बहुत बडी समस्या उत्पन्न करते हैं। द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत शिलालेख, ताम्रपत्र, प्राचीन हस्तलिख, जनश्रुतियाँ, प्रशस्तियाँ आदि आते हैं। इस क्षेत्र में नित्य नई सामग्रि प्रकाश में आती रहती है। अत: इतिहास – लेखन में नित्य संसाधन एवं परिवर्तन की समस्या स्थाई रूप से सामने रहती हैं। 'पृथ्वीराज रासो' के प्रामाणिक संस्कृरण का सम्पादन इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल किरचित हिन्दी साहित्य का इतिहास अपने क्षेत्र का सर्वाधिक मान्य गन्त्र है। आचार्य शुक्ल ने कवियों के नाम, जीवन, चरित्र इत्यादि की अपेक्षा कवियों की कृतियों के महत्त्व पर अधिक ध्यान दिया है। उनका कथन स्पष्ट है। कुछ कवियों के नाम छूट गये था किसी कवि की मिली हुई पुस्तक का उल्लेख नहीं हुआ तो इस से मेरी विशेष बडी उद्देश्य हानि नहीं हुई। ''शुक्ल जी ने इतिहास एवं सामग्री सम्बन्धी त्रुटियों एवं भ्रान्तियों की ओर ध्यान ही नहीं दिया, उनके निराकरण का तो प्रश्न ही नहीं था। परवर्ती लेखकों ने आचार्य शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' को आधार बनाया फल स्वरूप हिन्दी साहित्य के इतिहास – लेखन के सम्बन्ध में कई समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

सर्व प्रथम समस्या है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास कब से माना जाता चाहिए और हिन्दी भाषा के किस रूप को हिन्दी साहित्य की भाषा माना जाए। साधारणतया हम तत्सम

गर्भित हिन्दी के रूप को ग्रहण करते हैं। यदि हिन्दी का वर्तमान रूप उस प्राचीन रूप का विकास है तो अवहट्ट काल के ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की सामग्री के रूप में स्वीकार किये जाने चाहिए। यही समस्या हिन्दी के क्षेत्र के सम्बन्ध में भी उत्पन्न होती है। हिन्दी का क्षेत्र जेसलमेर, रायपुर, नेपाल की पहाडियों, अम्बाला तथा शिमला तक माना जाता है। किन्तु हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखनेवालों ने उक्त सीमाओं में आने वाले समस्त साहित्य के इतिहास पर विचार नहीं किया है। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय यह भी सोचना पडेगा कि हिन्दी की किन – किन उपभाषाओं के साहित्य पर विचार किया जाए। अब तक अधिकांश इतिहासकार प्राय: व्रज और अवधी के साहित्य पर विचार करते आ रहे हैं। बुन्देली, कन्नौजी, बघेली आदि के साहित्य की उपेक्षा होती रही।

2. आदिकाल :

अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संवत 1050 – 1375 की कालावधि को हिन्दी साहित्य का आदिकाल मनकर, काव्य रचना की प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर उसका 'वीरगाथा – काल' नामकरण किया। आदिकाल के सामान्य परिचय के अन्तर्गत उन्होंने यह भी लिख दिया, ''प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी – साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है। उस समय जिस प्रकार गाया कहने से प्राकृत का बोध होता था, उसी प्रकार दोहा या दूहा कहने से अपभ्रंश का काव्य प्रचलित भाषा का पद्य समझा जाता था। अपभ्रंश या प्राकृत भाषा हिन्दी के पद्यों का सब से पुराना पता तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों को साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में लगता है। मुंज और भोज के समय (सं 1050 के लगभग) में तो ऐसी अपभ्रंश था पुरानी हिन्दी का पूरा प्रचार शुद्ध साहित्य या काव्य रचनाओं में भी पाया जाता है। अत: हिन्दी का आदिकाल संवत 1050 से लेकर संवत 1375 तक, अर्थात, महाराजा भोज के समय से लेकर हम्मीर देव के समय के कुछ पीछे तक माना जा सकता है।''

विद्वानों के अनुसार सं 700–1070 तक की कालावधि हिन्दी साहित्य का आदिकाल है तथा अवहट्ट को हिन्दी साहित्य की हिन्दी का प्रारम्भिक रूप माना जाता है। सं 1050 से 1375 को कालावधि को शुक्ल जी ने आदिकाल काल अथवा वीरगाथा काल अथवा प्रारम्भिक काल कहा है।

शुक्लजी के द्वारा किया गया काल –विभाजन इस प्रकार है –

1. आदिकाल अथवा वीरगायाकाल – सं. 1050 – 1375
2. पूर्वमध्यकाल अथवा भक्तिकाल – सं 1375 – 1700
3. उत्तरमध्यकाल अथवा रीतिकाल – सं – 1700 – 1900
4. आधुनिक काल अथवा गद्यकाल – सं 1900 से आजतक

3. भक्तिकाल :

भक्तिकाल की कालावधि के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है। वह सर्व स्वीकृत है। इसके नामकरण के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं है। रीतिकाल के नामकरण के बारे में विवाद दिखाई देता है। भक्ति, भक्तिकाल के कवि, भक्तिकाल की रचनाएँ आदि सर्वमान्य हैं।

4. रीतिकाल :

कुछ विद्वान रीतिकाल को श्रृंगारकाल अथवा अलंकृत काल कहते हैं। किन्तु रीतिकाल नाम ही सर्वाधिक उपयुक्त है। रीतिकाल की कालावधि विवादास्पद है। आचार्य रामचन्द्रशुक्ल आचार्य चिन्तामणि त्रिपाठी को रीतिकाल का प्रथम आचार्य कवि मानते हैं, क्योंकि उन्हीं के साथ श्रृंगार रस में रीति–निरूपण की परम्परा चली। चिन्तामणि त्रिपाठी की भाँति अन्य कवि भी इस मत के अनुयायी रहे। इस सन्दर्भ में एक अन्य तथा भी द्रष्टव्य है। रीति–निरूपण–सम्बन्धी प्रथम रचना केशवदास कृत रसिकप्रिया है। अत: केशवदास रीतिकाल के प्रथम आचार्य ठहरते हैं। वे अलंकार मत के अनुयायी थे और उनके 50 वर्षों बाद तक कोई रीतिग्रन्थ प्राप्त नहीं होता। रीतिग्रन्थ की प्रणयन परम्परा उन से प्रारम्भ नहीं हुई। अत: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रीतिकाल का आरम्भ सं 1700 से मानते हैं।

5. आधुनिक काल :

आचार्य शुक्ल ने संवत 1900 से अर्थात् सन् 1857 में होनेवाले प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से अद्यतन कालावधि को आधुनिक काल कहा है और इसे गद्यकाल नाम दिया आधुनिक काल द्वारा खडीबोली साहित्य का बोध होता है। इस कालावधि में हिन्दी – साहित्य जगत ने अनेक उतार – चढ़ाव देखे हैं। उस में अनेक वाद, प्रवृत्तियाँ, काव्य – धाराएँ आदि दर्शित होते हैं। भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग तो परम्परा के युग थे। उनके साहित्यिक मूल्य और प्रतिमान प्राय:

पूर्व प्रचलित ही रहे और परम्परा के रूप में चले आ रहे थे। केवल गद्यकाल का प्रवर्तन एक नवीनता रही। दूसरी ओर द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्तिम दिनों में तारसप्तक के प्रकाशन के साथ हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में नवीन निकष एवं धरातल समुपस्थित किये गये। इस प्रकार आचार्य शुक्ल के द्वारा और अधिकांश लोगों के द्वारा मान्य आधुनिक काल दो भागों में विभक्त हो जाता हैं – स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व का काल और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की कालावधि। स्तन्त्रता के बाद वाले काल में ही काव्य–जगत में बुद्धिवादी दृष्टिकोण विशेषण रूप से पनपा है। अत: इसी को आधुनिक काल कहना अधिक समीचन लगता है। अत: स्वतन्त्रता पूर्व कालावधि को गद्यकाल कहें और परवर्ती काल को आधुनिक काल कहें तो अधिक उपयुक्त होगा।

आधुनिक काल में विविध काव्य – प्रवृत्तियों के अलावा अनेक प्रकार की विचाराधाराओं की अभिव्यक्ति भी प्राप्त होती है। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का इतिहास लिखते समय हमारे सामने यह समस्था उत्पन्न होती है कि किसी साहित्यकार को इतिहास में स्थान रखा जाए और किस की उपक्षा की जाए कुछ विद्वान उर्दू को हिन्दी की शैली मानते है। तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि उर्दू की रचनाओं को हिन्दी साहित्य में स्थान दिया जाए था नहीं। फिर, स्थान दिया जाए तो किस स्तर तक?

जो अंग्रेजी भाषा और साहित्य के ज्ञाता थे, महावीर प्रसाद द्विवेदी उन रचनाओं को वरीयता प्रदान करते थे। सरस्वती में स्थान न पा सकने के कारण अनेक रचनाएँ अप्रकाशित बनी रहीं। पद्य का इतिहास लिखते समय इतिहासकारों ने परिनिष्ठित काव्य पर ही विचार किया है। लोक –साहित्य और उसके रचनाकारों की उपेक्षा की गयी है। हिन्दी साहित्य तथा कथित कतिपय शिष्ट नगर – निवासियों तक ही सीमित नहीं है। लोक – साहित्य, लोग गीत, लोक – नाट्य, स्वांग आदि को हिन्दी सहित्य के इतिहास में स्थान देने या न देने की समस्या उपस्थित होती है। सन् 1857 ई. में होनेवाले प्रथम स्वतन्त्रता – संग्राम से अब तक की कालावधि को आधुनिक काल कहा जाता है। आधुनिक काल द्वारा खडी बोली में रचित साहित्य का बोध होता है। भारत की ग्रामीण जनता उतनी अनपढ़ नहीं थी जितनी अनपढ़ मान बैठा है। सन् 1857 ई. के पूर्व ही खडीबोली एक निश्चित रूप ग्रहण कर चुकी थी, बहुत कुछ वर्तमान खडी बोली का रूप/ काँगडा शैली के चित्रों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इन चित्रों से सम्बन्धित गुरुमुखी एवं नागरी लिपियों में व्रजभाषा के अनेक छन्द लिखे गये हैं। उनका अध्ययन व्रजभाषा काव्य के पुनर्मूल्यांकन में सहायक सिद्ध होगा।

अनेक कवियों एवं साहित्यकारों के विषय में प्रचारित भ्रान्त धारणाओं का निवारण हिन्दी साहित्य के इतिहास – लेखन की एक गम्भीर समस्या है। उदाहरण के लिए पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की चर्चा केवल एक कहानीकार के रूप में की जाती है। पंडित श्रीधर पाठक की मान्यता केवल कवि के रूप में ही है। गुलेरी जी ने अनेक सुन्दर गीतों की और कविताओं की रचना की। श्रीधर पाठक उच्च कोटि के गद्यकार भी थे। अत: हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुन: लेखन इस प्रकार होना चाहिए कि एकांगी पक्षों का उचित निवारण हो जाए और नवीन तम शेध–समीक्षा उस में स्थान प्राप्त करें।

6. उपसंहार :

हिन्दी साहित्य के इतिहास – लेखन का कार्य अभी तक वस्तुत: सुविधावादी रहा है। परन्तु, हिन्दी साहित्य के इतिहास का पूर्ण एवं सर्वांगीण इतिहास का लेखन हिन्दी के सेवकों का नैसर्गिक दायित्व है। इस दायित्व के निर्वाह हेतु उन्हें मौलिक आधार निर्धारित करने होंगे।

विभिन्न स्थलों का अंचलवार साहित्यिक इतिहास होगा और तब आंचलिक योगदान को समायोजित करके इतिहास–लेखन के कार्य को आगे बढ़ाना होगा। प्रत्येक अंचल की प्रत्येक विधा पर पृथक रूप से शोध कार्य किया जाए और उसका समायोजन एवं मूल्यांकन करके हिन्दी साहित्य के इतिहास का लेखन किया जाए। यह कार्य व्यक्तिगत स्तर पर न होकर संस्थागत स्तर पर होना सम्भव हो सकता है। आंचलिक स्तर पर कार्य व्यक्ति गत स्तर पर भले ही हो परन्तु उपलब्ध समस्त सामग्री के समयोजन का उत्तरदायित्व किसी संस्था को ही ग्रहण करना होगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के नाम पर अभी तक जो कुछ लिखा गया है, उसमें बहुत कुछ अधूरा एवं अप्रमाणिक है। समस्या यह है कि जीवन सम्बन्धी प्रामाणिक सामग्री, प्रामाणिक कृतित्व तथा हस्त–लिखित प्रतियों के प्रामाणिक पाठ उपलब्ध हों। नवीन शोध – कार्य के प्रकाशन में उक्त सामग्री का परीक्षण एवं शोधन किया जाए। तब इतिहास लेखन नये सिरे से लिखा जाए।

Lesson Writer

ऐनम्पूडि कविता एम.ए.

प्र.5. बंगला भाषा का सामान्य परिचय देते हुए उसके उद्‌भव एवं आदिकाल पर संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

रूपरेखा :

1. प्रस्तावना
2. आदिकाल
3. आरम्भ काल

1. प्रस्तावना :-

विद्वानों के अनुसार बंगला भाषा का उद्‌गम असमिया, उडिया और मैथिली की भाँति मागधी प्राकृत से हुआ है। भाषा के विकास के साथ कुछ अनार्थ तत्त्व, अनार्थ कल्पना चित्र एवं अनार्थ विचार भी इस भाषा में घुलती - मिलती गयी, आर्थों के पहले बंगला देश में सभ्यता की दृष्टि से बहुत सामान्य कोटि के लोग रहते थे। ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर इसा की पाँचवीं शताब्दी के मध्यकाल तक वे लोग सम्पूर्ण प्रदेश में फैलने और बसने लगे। शिक्षा, सामाजिक व्यवहार एवं व्यापार की भाषा संस्कृत थी और इनकी घरेलू भाषा संस्कृत से उत्पन्न प्राकृत थी। बंगाल में साहित्य की नींव इन्हीं उपनिविष्ट आर्यों द्वारा रखी गयी थी। पहले अनेक शताब्दियों तक वे संस्कृत में ही लिखते थे। अब इन सब लेखों का नमूना ताम्रपत्रों पर लिखित अनुशासकों अथवा भूमिदान पत्रों एवं कुछ महाकाव्यों और कतिपय श्लोकों में प्राप्त होता है।

2. आदिकाल :-

अभिन्द कृत रामचरित बंगला भाषा का प्राचीनतम काव्य है। प्राय: वे सम्राट देवपाल के अनुचर थे। इस में रामकथा एवं सम्राट रामपाल देव की जीवनी एक साथ वर्णित है। पाल शासक विद्योत्साही थे। पाल राजाओं के पश्चात वर्क और सेन वंशों का राज्य - काल आता है। वे भी विद्याभिमानी थे। 8 वीं शताब्दी में महायान बौद्ध धर्म के 'चर्चा गीत' बंगला भाषा में प्राप्त होते है।

1000-1200 ई के बीच सेन राजाओं के राज्य-काल में बंगला प्रमुख रूप से बौद्ध - देश से हिन्दू देश बन गया था।

3. आरम्भकाल :-

ईसा की 12 वीं शताब्दी के अन्तिमभाग में बंगाल में लक्ष्मण देव का शासन आता है। उन की सभा में उमापतिघर, शरहण, छीपी, गोवर्धना चर्चा एवं जयदेव पाँच विख्यात कवियों का सम्मेलन हुआ था। जय देव के पद उनके जीवन काल में ही लोकप्रिय होकर गाये जाते थे।

बौद्ध सिद्धाचार्य बंगला में पद रचते थे। 10–11 वीं शताब्दियों के नीच बंगला भाषा अपभ्रंश से पृथक होकर जयदेव के साथ बंगला साहित्य का आदिकाल अन्त होता है। चर्चा गीतों की रचना का समय अधिकांश विद्वान 10 वीं और 12 वीं शताब्दी के बीच मानते हैं। इन गीतों में तत्कालीन हिन्दू तथा बौद्ध धर्मों और उनकी संस्कृतियों का सुन्दर समावेश परिलक्षित होता है। डॉ. डी. सी. सेन आदिकालीन 8वीं से 12 वीं शताब्दी तक के काल में उपलब्ध साहित्य के विशेष प्रकारों का उल्लेख किया है –

1. दो उपासना – विषयक कृतियाँ – शून्य पुराण और धर्मपूजा विधान/ ये गूढ़ बौद्ध धर्म – सम्प्रदाय के ग्रन्थ हैं।
2. जनश्रुति के अनुसार कुछ पुरानी कहावतें।
3. प्राचीन लोक – साहित्य एवं स्त्रियों की व्रत कथाओं से सम्बद्ध कुछ पद्यबद्ध कथाएँ।
4. अनेक विद्वान चर्चा गीतों को आदिकालीन बंगला साहित्य की सम्मति देते हैं।

गीत गोविन्द संस्कृत की रचना होने पर भी लोकप्रियता की दृष्टि से छन्द, अनुप्रास, लय – ताल आदि में प्राकृत की प्रवृत्तियाँ स्फुट हैं जो बंगला – कविता के विकास में निरन्तर क्रियाशील हैं 15 वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में पश्चिम बंगाल में बृन्दावन दास का चैतन्य भागवत ग्रन्थ प्राप्त होता है। उस में कृष्ण की बाललीलाओं एवं शिव के गृहस्थी के गीत बहुत लोकप्रिय हुए। उन्हें गाकर भिखारी भीख माँगा करते थे।

रामायण गान एवं ऐतिहासिक गाथाओं को साधारण हिन्दू – मुसलमान सभी रुचिपूर्वक गाते थे।

15 वीं शताब्दी के मध्य– भाग तक बंगला साहित्य का आरम्भ काल माना जा सकता है। इसी के साथ भक्तिकाल का आरम्भ होता है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र. 6. बंगला के पूर्व मध्यकालीन साहित्य का परिचय दीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. वैष्णव साहित्य

1. प्रस्तावना :-

12 वीं शताब्दी के अन्त तक बंगाल मुसलमानों के अधिकार में चला गया। फलत बंगाल के सामाजिक और परम्परा और संस्कृति ने अपनी पुरानी गरिमा और प्रभाव खो दिये। प्रदेशीय संस्कृति और परम्परा परनये विषय तथा नये प्राणों का संचार हुआ जिस से बंगला के साहित्यिक विकास में पर्याप्त सहायता मिली।

2. वैष्णव साहित्य :-

अध्ययन की सुविधा के लिए बंगला साहित्य का मध्यकाल दो भागों में - (1) पूर्वमध्यकाल एवं (2) उत्तर मध्यकाल में विभक्त किया गया। पूर्व मध्यकाल में सर्व प्रथम कवि चण्डी दास थे जिन्होंने राधा - कृष्ण विषयक गीतों की रचना की थी। पश्चात परवर्ती कवियों ने उनके माधुर्य का स्तवन किया। चैतन्य देव भी चण्डीदास के काव्य के अनुरागी थे। चण्डी दास कृत गन्थ 'श्री कृष्ण कीर्तन' अपूर्ण है। इस में पाँच सी से अधिक गीत हैं। इस में राधा - कृष्ण के प्रेम-गीतों का अध्यात्मिक स्वरूप वर्णित है। साथ ही इस में नाटकीय तत्व का समावेश भी हुआ है और उपमा, रूपक आदि अलंकारों का सहज प्रस्फुटन हुआ है।

चण्डीदास ने श्रीकृष्ण कीर्तन के अलावा अनेक मुक्तक वैष्णव प्रेमगीतों की रचना की। उनकी कविता मर्मस्पर्शी, भावोत्पदाक, प्रसादत्व, विशदता, स्वाभाविकता, स्पष्टता और पैनामन दिखाई देते हैं। विद्यापति के राधा - कृष्ण विषयक पद अध्यात्मिक रस पुष्टि के साथ विद्यापति को वैष्णव कवियों की कोटि में रखते हैं। इनके प्रेम तथा श्रृंगार - परक पद भी प्राप्त होते हैं। परवर्ती कवियों ने इस दिव्य अवसर को लक्ष्य करके कविताएँ की थीं। 15 वीं शताब्दी के महान वैष्णव भक्त चैतन्य प्रभु ने भी उनका आत्मिक सम्मेलन करादिया। चैतन्य प्रभु और उनके अनुयायियों ने चण्डी दास के गीतों के साथ - साथ विद्यापति के गीतों को भी अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया। बंगाल के परवर्ती वैष्णव कवियों ने विद्यापति की काव्य-भाषा पर मुग्ध होकर अपने काव्यों में उनकी अवधारणा का प्रयत्न किया और इसी प्रक्रिया में मध्यकालीन बंगला और

मैथिली के मिश्रण द्वारा एक नई काव्य भाषा 'व्रजबुली' उद्भावना हुई। बहुत दिनों तक यह विवाद का विषय बना रहा था कि विद्यापति बंगाल के कवि हैं अथवा हिन्दी के। बीसवीं सदी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों ने क्रिया पदों के आधार पर विद्यापति को हिन्दी कवि के रूप में मान्यता दी।

बंगला के एक अन्य महत्वपूर्ण कवि हैं –

कृत्तिवास ओझा। वे 15 वीं शताब्दी के मानेजाते हैं। बंगाला रामायण साहित्य के वे सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। तुलसी कृत रामचरित मानस की जो मान्यता उत्तर हिन्दुस्तान में है, वही मान्यता कृत्तिवास सामायण की बंगला में है। बंगल में भक्ति आन्दोलन कृष्ण भक्ति तक ही सीमित रहा और राम भक्ति सम्प्रदाय एक स्फुट सम्प्रदाय के रूप में प्रचलित रहा।

मालाधर बसु नामक कवि ने रुकुनुद्दीन बरबक नामक मुसलमान शासक के आश्रय में 'श्रीकृष्ण–विजय' नामक काव्य की रचना की। मालाधर बसु को चैतन्य भक्ति–सम्प्रदाय से काव्य – प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

मुसलमानों के शासन काल में निम्न स्तर पर धार्मिक भावना को विकसित होने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। प्रादेशिक साहित्यों और विषयों को उभरने का अवसर प्राप्त हुआ। तान्त्रिक बौद्धों की देवियाँ और हिन्दुओं के देवी – देवताओं के साथ समन्वय होकर दोनों के बीच का अन्तर कम हो गया। इस समन्वय से 'मंगल काव्य' नामक एक नये काव्य का उदय हुआ। इस काव्य में हिन्दू एवं बौद्ध मान्यताओं का गहरा समन्वय दिखाई देता है।

मंगल काव्यों की रचना का कारण धार्मिक प्रचार ही लगता है। विद्वानों के अनुसार मंगल काव्य के रचनाकार प्रमुखत: कवि थे। गौण रूप में वे ग्रन्थ धर्म – प्रचार भी करते थे। वे काव्य समसामयिक समाज के सजीव शब्द चित्र हैं। उन में ऐतिहासिक महत्ताभी उभरी हुई है। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और भौगोलिक तथ्य भी उन काव्यों में उल्लिखित हैं।

मंगल –काव्य के विविध प्रकारों में अधिक महत्त्वपूर्ण तीन हैं – मनसा – मंगल, चण्डी–मंगल एवं धर्म–मंगलाइन तीनों में प्राय: मानसा – मंगल सब से प्राचीन है। विजयगुप्त का मनसा – मंगल अथवा पद्मपुरण सब से पहली उपलब्धि है।

मनसा मंगल के एक और प्रसिद्ध रचनाकार हैं – नारायण देवा वे 16 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के माने जाते हैं। केतका दास एवं क्षेमानन्द कवियों के नाम बाद में उल्लेखनीय हैं। चण्डी – मंगल 14 वीं शताब्दी से लेकर 16 वीं शताब्दी के बीच शादी शासन के साथ चला था। यह बंगला साहित्य का उत्तरकाल माना जाता है।

बंगाल के समान आसान में भी 15 वीं शताब्दी के अन्तिक चरण में ब्रज बोली में कृष्णलीला विषयक रचना की प्रथा प्रचलित हुई। उस समय असमिय भाषा बंगला भाषा से स्वतन्त्र नहीं थी। उत्तर – पूर्व वंग की भाषा आसाम में प्रचलित थी। शंकर देव आसाम में वैष्णव धर्म का प्रचार करते थे। वे चैतन्य देव के समकालीन थे। उनके 'राम विजय' काव्य की कुछ पंक्तियाँ–

रासक–परम भक्ति रस जाना।

श्री शुक्ल ध्वज नृपति प्रधाना।

रामविजय जो कराओत नार।

मिलह तानि वैकुण्ठक बार।

बंगाल से ही ब्रजबोली की पद –रचना की धारा उडीसा में प्रचलित हुई। उडीसा में रामानन्द राय ने प्राचीनतम पदों की रचना की। वे चैतन्य देव के अनन्य भक्त थे।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र. 7. बंगला साहित्य के उत्तर मध्य कालीन साहित्य का परिचय दीजिए।

1. प्रस्तावना
2. वैष्णव साहित्य
   (क) गीतिकाव्य
   (ख) चरित काव्य
      (1) अनुवाद साहित्य
      (2) मंगल काव्य
3. पूर्वी बंगाली गीत
4. उत्तर कालीन बंगला साहित्य
5. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

चैतन्य महाप्रभु का अभ्युदय बंगला साहित्य के इतिहास में एक युगान्तकारी घटना थी। उन्होंने बंगला साहित्य को व्यापक एवं अनुकूल रूप में प्रभावित किया। व्रजमंडल में, विशेषत: बृन्दावन में उनका प्रभाव, सर्वविदित है। चैतन्य देव का जन्म- 'बवद्वीप' अथ्वा स्थान 'नदिया' उस समय बंगला संस्कृति का केन्द्र बिन्दु था। वह वैष्णव धर्म का केन्द्र होने के साथ-साथ संस्कृत अध्ययन का भी महत्त्वपूर्ण अध्ययन केन्द्र बन गया था। नवद्वीप के सांस्कृतिक महत्व के पीछे एक परम्परा थी।

बंगाल में वैष्णव धर्म की धारा धार्मिक एवं साहित्यिक आन्दोलन के रूप में चैतन्य के बहुत पहले से ही प्रवाहित हो रही थी। चैतन्य ने उसे एक नवचेतना प्रदान की और वह कवियों के एक सशक्त प्रेरणा स्तोत बन गये।

चैतन्य ने बृन्दावन तक साहित्य की रचना को प्रभावित किया। वृन्दावन में चैतन्य महान गोस्वामी शिष्यों ने वैष्णव संहिताब किया और उसे एक प्रामाणिक रूप प्रदान किया। मध्यकालीन कवियों के एक वर्ग विशेष ने तथा अगली शताब्दी के अनेक कवियों ने चैतन्य के चरित्र और लीलाओं को लक्ष्य करके अनेक पंक्तियों लिखीं। चैतन्य के उपदेशों द्वारा उन्हें राधा -कृष्ण की लीलाओं के विषय में जो कुछ ज्ञात हो सका उस पर भी उन्होंने शत-सहस्र कविताओं की रचना की।

उक्त गोस्वामियों में से सनातन गोस्वामी एवं गोस्वामी तथा उनके भतीजे जीवन गोस्वामी ने चैतन्य मत के प्रवाह के लिए काव्य–ग्रन्थ लिखे और संस्कृत गद्य–पद्य में अध्यात्मिक प्रवचन एवं निबन्ध – रचना की। यह मत बंगाल के वैष्णव समप्रदाय के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इनके अलावा कवि कर्णमूर ।मरमानन्द सेन, कृष्णदास कविराज, बलदेव विद्याभूषण ने संस्कृत ग्रन्थों का प्रणयन किया। इसी उद्देश्य से संस्कृत में ग्रन्थ लिखने वालों में 17 वीं शताब्दी के विश्वनाथ चक्रवर्ती का नाम उनकी कृतियों के नाम इस प्रकार हैं।

2. वैष्णव साहित्य :-

चैतन्य देव से प्रभावित बंगला साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है – (क) गीति काव्य और चरित – काव्य।

(क) गीति काव्य :-

इस काल में वैष्णव कवियों की संख्या लगभग एक सौ सत्तर बैठती है। इन में प्रमुख नाम हैं – मुरारी गुप्त, नरहरि सरकार, वासुदेव घोष, रामानन्द वसु आदि। गुणवत्ता और परिमाण दोनों दृष्टियों से राधाकृष्ण के प्रेम–विषयक गीत बंगाल की जनता में इतने लोक प्रिय हुए कि अनेक मुसलमान कवियों ने भी संकोच रहित इस विषय पर गीतों की रचना की।

गौरांग विषयक कविताओं को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है –

(1) इन में गौरांग के जीवन के विभिन्न अवस्थानों, कृत्यों, एवं उनकी दशाओं का वर्णन है। इन गीतों में युवती, पत्नी, और विधवा वृद्धा माता को छोडकर नागरिक जीवन में वैराग्य लेने पर विशेष बल दिया गया है।

(2) गौरांग को कृष्ण का पूर्णावतार माना गया है।

(3) गौरांग किसी दिव्य भाव में तन्मय और बेसुध दिखाए गये हैं। ऐसा लगता है कि अनुभूति की गटनता में उन्होंने कृष्ण या राधा का साक्षात्कार कर लिया हो।

गौरांग के भक्त विश्वसित करते हैं कि बृन्दावन की अलौकिक कृष्णलीलाओं का रहस्य समझने के लिए गौरांग के जीवन और कृत्यों से अवगत होना परम आवश्यक है।

कृष्ण विषयक कविताएँ :-

कृष्ण विषयक कविताएँ राधा – कृष्ण के प्रेमतत्तव पर आधारित है। कुछ कविताएँ कृष्ण की बाललीलाओं को आधारित बनाकर रची गयी हैं।

बंगाली वैष्णव की सब से बडी कामना रहती है, अप्रकृत वृन्दावन में होनेवाली कृष्ण लीलाओं का साक्षात्कार करना, जो अतुलित कृष्ण भक्ति के द्वारा ही सम्भव है। बंगाल के वैष्णव राधा – कृष्ण का लीलाओं के साक्षी बनना चाहते हैं। इन गीतों में मानव पक्ष कहीं भी निर्बल हो नहीं पाया है। इनकी प्रेरणा में धार्मिक पक्ष का प्राधान्य है। अनेक कवियों ने एक ही विषय पर कविताएँ रची है। नवीनता एवं वैविध्य लाने के लिए उनको नयी प्रेम–परिस्थितियों की और असंख्य उपाख्यानों की उद्‌भावना करनी पडी। कवियों ने बहुत कुछ पुराणों की सहायता ली है और अपनी ओर से मन: सृष्टि भी की है।

वैष्णव बंगला कविताएँ भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से समृद्ध हैं।

(ख) चरित काव्य :-

16 वीं शताब्दी के पश्चात वैष्णव साहित्य में चरित साहित्य का सृजन आरम्भ हुआ। चैतन्य प्रभु के जीवन को आधार बनाकर अनेक चरित काव्यों की रचना होने लगी। चैतन्य के व्यक्तित्व में दैवत्व एवं मानवता का समन्वय था। उनके जीवन काल में ही कृष्ण अवतार माने जाने लगे। विविध कवियों ने उनकी पद्यबद्ध जीवनी की रचना की। उन में चैतन्य चरिताधृत काव्य और चैतन्य चन्द्रोदय नाटक प्रसिद्ध है। बृन्दावन दास ने चैतन्य भागवत की रचना की। लोचन दास और जयानन्द ने चैतन्य – मंगल की रचना की। इन सारे ग्रन्थों में तत्कालीन समाज का जीता –जागता चित्रण मिलता है। काव्य और दर्शन का समन्वय उस साहित्य में समाहित हुआ है। चैतन्य के अलावा अद्वैताचार्य के जीवन पर भी कुछ ग्रन्थ लिखे गये हैं।

(1) अनुवाद साहित्य :-

बंगला का अनुवाद साहित्य प्रधानतया तीन ग्रन्थों पर आधारित है। – (1) रामायण (2) महाभारत और (3) भागवत पुराण। अनुवाद होते हुए भी ये स्वतन्त्र ग्रन्थ माने जाते हैं। इस काल के अन्तर्गत कृत्तिवास, कवयत्री चन्द्रवती, कवि अद्‌भुताचार्य, पट्‌ठीश्वर सेन, गोपदास सेन एवं कविचन्द्र के नाम उल्लेखनीय हैं। कवीन्द्र परमेश्वर ने एक मुसलमान सेनापति के आश्रय में रहकर 'पाण्डव विजय' अथवा 'विजय पाण्डव' की रचना की। अनुवाद साहित्य के अन्तर्गत रामायण, महाभारत एवं भागवत का रूपान्तर हुआ।

(2) मंगल - काव्य :-

16 वीं शताब्दी के पहले मनसा मंगल और चण्डी मंगल नामक दो महत्त्वूपर्ण मंगल साहित्य की रचना की गई थी। धर्म- मंगल तीसरा मंगल काव्य है। धर्म - मंगल में निम्नवर्गीय हिन्दुओं द्वारा पूजित एक स्थानीय देवता का विवरण है। मनसा-मंगल, चण्डी- मंगल एवं धर्म - मंगल का व्यापक प्रचार नहीं हुआ। 18 वीं शताब्दी में धनराम चक्रवर्ती का नाम सर्वश्रेष्ठ धर्ममंगल काव्य के रचयिता के रूप में लिया जाता है। धर्म - मंगल काव्यों में बंगाल में धर्म - पूजा की कथा वर्णित है।

मंगल-काव्यों से सम्बद्ध एक अन्य प्रकार की काव्य धारा 'शैव काव्य' चली। इस धारा के काव्य 'शिवायन' कहलाते हैं। इस धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि रामेश्वर माने जाते हैं। तुकबिन्दियों के रूप में शैव गीतों की परम्परा 14 वीं शताब्दी से किसी -न-किसी रूप में चली आ रही थी। समग्र रूप से समीक्षा करने पर कहा जा सकता है कि बंगला साहित्य में शिव का उपहास्य के रूप में किया गया है, श्रद्धा -भक्ति के आलम्बन रूप में नहीं।

3. पूर्वी बंगाली गीत :-

17 वीं शताब्दी के अन्त में और 18 वीं शताब्दी में पूर्वी बंगाल के अनपढ़ किसानों की रचनाएँ प्रतीत होती हैं। बंगाल के विशिष्ट ग्रामीण परिवेश को लेकर विभिन्न प्रकार की प्रेम - कथाएँ वर्णित हैं। इनका स्वरूप विशुद्ध लौकिक है। इन गीतों को पात्र तथा रचयिता हिन्दू और मुसलमान दोनों ही है। इनकी शब्दावली भावपूर्ण, विशद एवं स्फूर्तिदायक है। ये हृदय स्पर्शी है। वे गये करुणापूर्ण तथा कोमल होते हैं और वर्णनात्मक होकर लंबी हैं।

4. उत्तर कालीन बंगला साहित्य :-

18 वीं शताब्दी को बंगला का हास काल कहा जा सकता है। विषय या रूप की दृष्टि से काव्य के किसी क्षेत्र में नया प्रयास नहीं किया गया। साहित्यकार एक प्रकार से पुरानी लकीर पीट रहे थे जो निर्जीव प्रतिमान थे। राजनीति के क्षेत्र में मुसलमानों के शासन के विघटन का काल था। केन्द्रीय शासन - सत्ता के अभाव में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हुई थी।

काव्य के तिरोभाव की स्थिति में पाण्डित्य प्रदर्शन की ओर झुकाव हुआ और अलंकार ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। इस काल में काव्य के विषय की दृष्टि से विद्या- सुन्दर की कथा का बोलबाला रहा। इस कथा को संस्कृत में ग्रहण किया गया। फिर बंगला के कवियों ने उस में

आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये। भरतचन्द्र छन्दों और अलंकारों के प्रयोग में अनुपम थे। उनके काव्य में यथार्थवादी पुर के साथ मानवीय मूल्यों की पुन: प्रतिष्ठा का प्रयास है। रामप्रसाद सेन ने कलिका – मंगल नामक ग्रन्थ की रचना की। उनके गीत एक विशेष प्रकार के आगमनी – संगीत और विजया – संगीत के नाम से प्रसिद्ध हैं।

5. उपसंहार :-

बंगला साहित्य को समृद्ध बनाने में मुसलमान कवियों एवं मुसलमान आश्रयदाता शासकों का भी योगदान रहा था। सैयद आलाओत नामक मुसलमान कवि ने मलिक मुहम्मद जायसी कृत प्रसिद्ध महाकाव्य पद्मावत का रूपान्तर बंगला में किया था। सूफी मत के प्रति समर्पित होने के फलस्वरूप वे पद्मावत में व्यक्त व्यक्त आत्मा की रक्षा कर सके। बाउल गीतों में भी हिन्दू– मुसलमान जनता के धार्मिक विचारों एवं सिद्धान्तों का सुन्दर समन्वय हुआ है। बाउल गीत ग्रामीण बंगाल के सन्त – कवियों द्वारा रचित थे। वे किसी दिव्य प्रेम के उन्माद में मग्न प्रतीत होते थे। सामान्य सामाजिक रीति– नीति को उन्होंने तिलांजलि देदी थी।

Lesson Writer

ऐनम्पूडि कविता, एम.ए.

प्र.8. 19 वीं शताब्दी में बंगला - साहित्य के विकास की चर्चा कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. 19 वीं शताब्दी का साहित्य
3. 19 वीं शताब्दी में बंगला – काव्य

1. प्रस्तावना :-

असमिया, उडिया और मैथिली भाषाओं की भाँति बंगला भाषा की उत्पत्ति एवं विकास पूर्व–प्राकृत एवं मागधी अपभ्रंश से हुआ। इसका विकास होते उस में अनेक अनार्थ भाषाओं के तत्त्व समाहित होते गये। शब्दावली, कल्पना –चित्र एवं विचारों में भी विविध अनार्थ तत्त्व समाहित हुए। अन्तिम अन्वेषणों के अनुसार बंगला साहित्य का सर्वाधिक आरम्भिक रूप 'चर्चा' गीत में प्राप्त होता है। 'चर्चा' गीत शुद्ध साहित्यिक न होकर महायान बौद्ध धर्म की शाखा के आचार्यों के संकेतात्मक उपदेश हैं। इन गीतों में और बंगाल के 'बाउस' नामक रहस्यवादी धुमक्कडों को गीतों में बडी विचित्र समानता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मानव धर्म पर अपने 'हिब्बर' भाषणों में बाउलों और उनके गीतों का उल्लेख किया है।

सेन राजाओं के शासन काल में बंगाल जो बौद्ध देश था, हिन्दू देश बन गया शून्य पुराण के अनुसार ब्राह्मणवादी बौद्धों का उत्पीडन करते थे। फलत: बौद्ध तुर्क विजेताओं की शरण में गये। मुकुन्दराव चक्रवर्ती का 'चण्डी मंगल' पुरानी बंगला की लम्बी कविताओं में प्रसिद्ध है। पृथ्वी पर चण्डी देवी की पूजा किस प्रकार प्रचलित हुई। इस में वर्णित है। इस काव्य में मानवीय सम्बन्धों का वैविध्यपूर्ण अंकन हुआ है। चण्डीदास, ज्ञानदास, गोविन्ददास, विद्यापति आदि वैष्णव कवियों का चण्डीमंगल के वैष्णव गीतों में उल्लेख है। इन्हीं के समकक्ष कृत्तिवास की रामायण और काशी रामदास के महाभारत का उल्लेख करना आवश्यक है। 17 वीं शताब्दी में दौलत काजी और दौलत काजी और सैयद अलाउल दोनों प्रतिभाशाली मुसल्मान कवि हुए थे। उन्होंने अराकान के मूग राजा और उनके मुसलमान सदस्यों का आश्रय प्राप्त किया था। 18 वीं शताब्दी में महाकवि भरतचन्द्र का रचनाकाल आता है। वे बडे प्रतिभावान एवं चमत्कारी कवि थे।

2. 19 वीं शताब्दी का साहित्य :-

19 वीं शताब्दी का आरम्भ ब्रिटिश राज्य की शक्ति और प्रतिष्ठा की स्थापना के साथ हुआ। यह एक संक्रान्ति का युग था । ईश्वर चन्द्र गुप्त इस शताब्दी के प्रमुख कवि थे। अपने आसपास की वस्तुओं का सूक्ष्म निरीक्षण तथा समकालीन घटनाओं के मूल रूपों का अध्ययन करने के पश्चात उन्होंने अपनी चुटीली शैली में इनका वर्णन किया। रक्षलाल, दीनबन्धु और बंकिमचन्द्र आधुनिक युग के तीन प्रमुख कवि हैं। इन तीनों कवियों पर ईश्वरचन्द्र गुप्त का व्यापक प्रभाव है। इस शताब्दी में अति प्राचीन एवं समृद्ध लोक गीतों एवं लोक गाथाओं की परम्परा मिलती है।

बंगला साहित्या में 19 वीं शताब्दी से पूर्व उल्लेखनीय गद्य साहित्य प्राप्त नहीं होता। इसकी परम्परा का प्रवर्तन कलकत्ता में में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ होता है। मुख्य शिक्षक विलियम केरी और उनके मुख्य सहयोगी मृत्युंजय ने बंगला गद्य को सुव्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया। उन्होंने अंग्रेज अफसरों को हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान कराने के लिए पाठ्य- पुस्तकों एवं व्याकरण - ग्रन्थों की रचना की।

बंगला के शक्तिशाली गद्य के प्रथम लेखक के रूप में राममोहन राय हमारे सामने आते हैं। वे बडे समाज सुधारक थे। उन्होंने धर्म, नीति एवं सामाजिक आचारों के सम्बन्ध में बंगाली गद्य में विविध पुस्तकों की रचना की। उनमें प्रतिभा, पुरुषार्थ एवं शक्ति तीनों गुण संपन्न थे. वे भव्यि दुष्टा भी थे, राजा राममोहन राय के ही प्रयत्नों से बंगाल में नव जागरण का सूत्रपात सम्भव हुआ। आधुनिक संस्कृति के सब से बडे उद्गाता कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर और राजा राममोहन राय के अत्यधिक ऋणी हैं।

कलकत्ता हिन्दू कॉलेज में तरुण विचारकों का एक एक दल तैयार हुआ, जो 'तरुण बंगाल' कहा जाता था। वे समाज में शीघ्र क्रान्ति एवं परिवर्तन चाहते थे। वे लोग राममोहन राय से त्वरित गति से आगे बढ़ना चाहते थे। दोनों दलों में अच्छे लोग थे, चरित्रवान, सज्जन और देशभक्त थे। राममोहन राय के अनुयायियों ने 'ताव बोधिनीशाला', का श्रीगणेश किया। माइकेल मधुसूदन दत्त अपने समय के अग्रगामी तरुण बंगालवादी थे, वे अंग्रेजी में कविता करने के इच्छुक थे। उन्होंने अनेक यूरोपीय भाषाओं पर अधिकार प्राप्त किया। आधुनिक बंगाली साहित्य के वे प्रथम महाकवि बने।

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ में 'राजा राममोहन्स लाइफ' नामक अंग्रेजी उपन्यास की रचना की थी। उन से प्रेरित होकर सरकारी अधिकारी रमेशचन्द्र दत्त ने कई श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना की। उसी युग में बिहारी लाल चक्रवर्ती और सुरेन्द्रनाथ मजूमदार दोनों कवियों ने अपना - अपना योगदान किया। तरुण रवीन्द्रनाथ पर बिहारी लाल का गहरा प्रभाव पडा। हिन्दू जतिवाद के वातावरण में रवीन्द्रनाथ का विकास हुआ। किन्तु जातिवाद से वे अधिक प्रभावित न हुए। इसके कारण - (1) वे कालिदास, जयदेव तथा अन्य वैष्णव कवियों के भक्त थे और अंग्रेजी के ब्राडनिंग, शैली, वड्र्सवर्थ, कीट्स आदि कवियों के प्रेमी थे (2) वे जिस परिवार में जन्मे और पले थे वह बहुत ही स्वाभिमानी एवं गंभीर था तथा जातिवाद एवं कट्टरता से मुक्त था। तरुण कवि के थे संस्कार कवि बिहारीलाल चक्रवर्ती के प्रभाववश अधिक गम्भीर बन गये।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर मुख्यत: प्रकृति - प्रेमी होने के कारण विकसित हुए। उन में बुद्धितत्त्व एवं हृदयतत्त्व दोनों विद्यमान थी; 26 साल की उम्र में उन्होंने केल के लिए कला की रचना से पूर्णरूपेण सफल कवि निकले । कला पर उनको पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया। 8 वर्षों की उम्र तक उन्होंने गीतों, नाटकों, कहानियों एवं निबन्धों की रचना की प्रकृति के प्रति गहरे प्रेम के साथ वे भगवान के प्रति भी लग्न हुए राष्ट्र - प्रेम एवं देश - भक्ति अब उनके लिए नये अर्थ देने लगे। उनका व्यापक परिवेश बन गया।

रवीन्द्रनाथ ने उपनिषद और बुद्ध के जीवन - दर्शन से प्रेरणा प्राप्त की। उन्होंने यह भी चाहा कि उनके देशवाशी पूर्ववत उच्च आदर्श ग्रहण करें और यूरोपीय भोग वादिता उन पर कोई प्रभाव न डाले। उनकी साधना क्रमश: ऊँचा उठने लगी।

3. 19 वीं शताब्दी में बंगला - काव्य :-

19 वीं शताब्दी तक बंगला साहित्य की दो धाराएँ चली आ रही थीं - (1) वैष्णव पदावली एवं पौराणिक काव्य और (2) लौकिक कथा - काव्य इसके अलावा बैठकी संगीत, तज्जी एवं कवि - गान इत्यादि शैलियों का भी प्रचार था। रघुनन्दन गोस्वामी वैष्णव पदावली और पौराणिक पद्धति के उल्लेखनीय कवि थे। इनके काव्य 'राम-रसायन', 'गीत-माला' एवं 'राधामाधवोदय' लोकप्रसिद्ध हुए।

मदन मोहन ने विद्यार्थी जीवन में 'रसतरंगिणी' और 'वासवदत्ता' नामक दो काव्यों की रचना की। इनकी अन्य पुस्तक शिशु - शिक्षा तीन खण्डों, में है। ईश्वरचन्द्र की कविता देश -

प्रेम युक्त होने के कारण विख्यात हुई थी। ईश्वरचन्द्र के अनेक साहित्यकार शिष्य हुए। ईश्वरचन्द्र ने बंगला काव्य में जिस आधुनिकता का सूत्रपात किया था, वह उनके प्रिय शिष्य रंगलाल की कविता में विकसित हुई। बंगला, अंग्रेजी एवं अंग्रेजी में रंगलाल ने कविताएँ की। पद्मिनी उपाख्यान, कर्मदेवी, शूर – सुन्दरी और काँची कावेरी उनके मौलिक काव्य हैं।

दीनबन्धु मित्र ने आरम्भ में तीन कविताओं की रचना की। फिर नाटक और प्रहसन लिख करवे यशस्वी हुए। कृष्णचन्द्र मजूमदार ने धर्म एवं नीति पर अपनी कलम चलाई। उनकी रचनाओं पर संस्कृत एवं फारसी की छाया है। 'सद्भावशतक' उनका प्रथम एवं श्रेष्ठ काव्य है

Lesson Writer

ऐनम्पूडि कविता, एम.ए.

प्र.9. बीसवीं शताब्दी में बंगला साहित्य के विकास पर विवेचन कीजिए।

बीसवीं शताब्दी के बंगला साहित्य के उदीयमान कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं और उनकी प्रथम रचना का नाम है 'नैवेद्य', अत: इस प्रकार कह सकते हैं कि बंगला साहित्य में बीसवीं सदी का उदय रवीन्द्रनाथ के 'नैवेद्य' से हुआ। यह एक सौ कविताओं का संग्रह है। ये कविताएँ सुगठित एवं चुस्त हैं। पारमात्मिक तत्त्व की जाग्रत चेतना नित्य जीवन के व्यवहार में पवित्रता, मातृभूमि के प्रति भविष्य की प्रेरणा इन कविताओं में चर्चित है। कवि के अनुसार हमारी मातृभूमि दो प्रकार की दासताओं में उलझी हुई है। एक ओर अहंकारी विदेशी विजेता और दूसरी ओर भारतीयों का अविवेक एवं प्रमाद। यह एक वैचारिक पुस्तक है। देश और मानव जाति को 'नैवेद्य' रवीन्द्रनाथ की प्रमुख देन है।

सन् 1905 लॉर्ड कर्जन ने वंग - भंग किया जिसका विरोध पूरे देश ने किया था। इस प्रबल विरोध का अत्यात्मिक पक्ष अपनी पूरी दिव्यता के साथ रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में पल्लवित हुआ। उनके गीतों एवं भाषाणों ने बंगाल की जनता को अभूतपूर्व विधान में उत्तेजित किया। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पक्ष में रवीन्द्र ने आत्म-निर्भरता पर बल दिया। रवीन्द्रनाथ की रचना ओं में आश्चार्य जनक संवेदनशीलता, सत्यानुभूति एवं जीवानन्द की प्रेरणा का निरन्तर विकास हुआ है। वंग - भंग आन्दोलन की सफलता के पश्चात 'बहिष्कार' और स्वदेशी आन्दोलन देशव्यापी शुरू हुए परन्तु, 'वंग-भंग' के समान वे रवीन्द्रनाथ को प्रभावित न कर सके। कारण, वे आन्दोलन कहीं - कहीं आतंकवाद से सम्बन्धित थे और रवीन्द्रनाथ भावुक हृदयी थे। रवीन्द्र की मान्यता थी कि सब प्रकार का आत्माभिमान जितना भी महान हो। वह मानवीय भावना को नष्ट न करे। उनका राष्ट्रवाद धीरे - धीरे अन्तरराष्ट्रवाद का पर्यायवाची बन गया है।

रवीन्द्रनाथ के अनेक प्रशंसक और अनुयायी थे। अनेक कवियों ने उन के शैली - शिल्प की नकल करने के प्रयत्न में थे। देवेन्द्रनाथ सेन अक्षय कुमार बडाल द्विजेन्द्रलाल राय,और सत्येन्द्रनाथ दत्त उनके प्रमुख शिष्य थे।

शरतचन्द्र चटर्जी ने रवीन्द्रनाथ के मानवतावाद और उनकी कला से अभिभूत होकर सन 1913 के आसपास रचना करना प्रारम्भ किया। उनको असाधारण प्रसिद्धि प्राप्त हुई। उन्होंने प्राचीन परम्परा से अलग हो यथार्थवादी लेखन प्रारम्भ किय। अत: आधुनिक विचारवाले पाठकों के बीच वे विशेष लोकप्रिय बन गये। वे यथार्थवादी होने के साथ साथ आदर्शवादी भी

हैं। उनकी मान्यता है कि मनुष्य स्वभावत: सुन्दर और महान है। उसके दोष बाहर जमी हुई धूल और मिट्टी के समान है। मिट्टी या धूल के धुल जाने से व्यक्ति की महत्ता प्रकट होती है। इस महान आस्था के कारण शरतचन्द्र कला के शिखर पर प्रखर उठे। उनके आगमन के कुछ वर्षों बाद बंगाली पाठकों को डॉ. नरेशचन्द्र सेन गुप्त नामक एक अन्य प्रमुख लेखक प्राप्त हुए। वे बडे उपन्यासकार थे। बेगम सकैया, काजी इच्दादुल हक और बुत्फर रहमान आदि बंगाल के प्रमुख तथा सुयोग्य साहित्यकार हैं। इन लेखकों के कुछ ही वर्षों बाद ढ़ाका विश्वविद्यालय के परिमण्डल में 'मुस्लिम साहित्य समा' नामक एक साहित्यिक संगठन का निर्माण हुआ तुर्की के कमाल पाशा अतातुर्क के सुधारों से उन्होंने स्फूर्ति ग्रहण की। ढ़ाका के मुस्लिम समाज से उस संगठन को अच्छा संगठन प्राप्त हुआ। ढ़ाका अब बंगला देश की राजधानी है।

उन्हीं दिनों में अपने आप को अत्याधुनिक कहनेवाले तरुण प्रभावशाली कवि – गोकुलनाथ, प्रेमेन्द्रमिश्र, जीवनान्द दास, बुद्धिदेव बसु, अचिन्तय सेन गुप्त आदि आये। बुद्धदेव बसु और अचिन्त्य सेन गुप्त प्रसिद्ध फ्रायडवादी थे। रवीन्द्रनाथ ने अपनी नई कहानियों एवं नये उपन्यासों में इन तरुण लेखकों के प्रभाव को कुछ अंशों में स्वीकार किया । रवीन्द्र की कलात्मक निपुणता द्वारा वे लेखक भी लाभान्वित हुए।

इसके बाद सुधीन्द्रनाथ दत्त, विष्णु दे और अमिय चक्रवर्ती आदि लेखकों का दल आया। इस दल के लेखक रवीन्द्रनाथ तथा अन्य बंगाली लेखकों को अपेक्षा अंग्रेज तथा यूरोप के लेखकों द्वारा अधिक प्रभावति थे।

शरतचन्द्र के पश्चात् विभूतिभूषण बनर्जी ने अपनी कहानियों एवं अपने उपन्यासों को समृद्ध बनाया। विशेष कर आरण्यक और पाथेर पांचाली द्वारा (इसके नाम से बनी फिल्म अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है।

विभूतिभूषण प्रकृति के बहुत प्रेमी और ग्राम्यजीवन के चाहने वाले थे। विभूतिभूषण की आधुनिकता एवं महानता का भेद यह है कि उनकी रचनाओं में प्रकृति के साथ मनुष्य के दैनिक सम्बन्ध की समझ और उसकी अभिव्यंजना के मामले में उनमें गहरी सहृदयता मिलती है।

शरतचन्द्रोत्तर उपन्यासकारों और कहानीकारों के तीन वर्ग मिलते हैं; यथा –

(क) वे लोग जिन्होंने रवीन्द्रनाथ और शरतचन्द्र की परम्परा का न्यूनाधिक अनुसरण किया।

(ख) वे लोग जो कविता में अति – आधुनिक और अपनी कहानियों में भी उस प्रवृत्ति से भिन्न नहीं

(ग) वे लोग जो वामपंथी हैं।

प्रथम (क) वर्ग के कथाकारों (उपन्यासकारों) में मुख्य हैं – शैलजानन्द मुखर्जी, प्रेमेन्द्र मित्र, मेहबुबल आलम (चटगाँव के) वनफूल, अनन्दाशंकर राय, ताराशंकर वन्द्योपाध्याय, सरोज राय चौधुरी, विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, सुबोध घोष, नारायण गंगोपाध्याय, भादुड़ी सुरेन्द्र मित्र और आंशापूर्णा देवी।

द्वितीय (ख) वर्ग के लेखकों को रोमांटिक लेखक भी कहा जाता है। इनमें प्रमुख हैं – प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धवेव बसु, अचिंत्यसेन गुप्त, मौनीन्द्रपाल बसु, मनोज बसु और प्रमोद कुमार सान्याल। इनमें प्रेमेन्द्र मित्र, विशेषत: कहानियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। रवीन्द्रनाथ और शरतचन्द्र के बाद कहानी क्षेत्र में ये ही प्राय: सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। अशीम राय एक तरुण रोमांटिक लेखक हैं।

तृतीय (ग) वर्ग के लेखकों में यानी वामपंथियों में माणिक वन्द्योपाध्याय प्रसिद्ध नेता हैं। वह अपने उपन्यास पुतुल नामेर इति कला (कठपुतली के नाथ की कहानी) के कारण प्रसिद्ध हुए अन्य वामपंथी लेखक हैं – अमरेन्द्र घोष, समदेश बसु, गुलाम कुद्दूस, गोपाल हालदार। कुछ वामपंथी कवि भी सामने आये हैं ; यथा – सुकांत भट्टाचार्य, सुभाष मुखोपाद्याय, मणीन्द्र राय तथा पूर्णेन्दु यत्री।

बंगला के आधुनिक साहित्य को महत्वपूर्ण देन देने वाली महिला लेखिकाओं में उल्लेखनीय नाम हैं – स्वर्ण कुमारी देवी, गिरीन्द्र मोहिनी दासी, मानकुमारी देवी, कामिनी राय, प्रियम्बदा देवी, बेगम सकैया, निरुपमा देवी, प्रतिभा बसु, बेगम सूफिया कमाल, अनुरूपा देवी, सीता देवी, शान्ता देवी, लीला मजूमदार मैत्रेयी देवी, प्रभावती देवी और वाणी राय।

बाल साहित्य :-

बालोपयोगी साहित्य में रामायण, महाभारत और लोक साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन ग्रन्थों में बहुत काम की बातें थीं, परन्तु हमारे आधुनिक लेखकों ने इस विधा को विशिष्टता प्रदान की है। रवीन्द्रनाथ का योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण है। उनके शिशु – गीत विश्व में विख्यात हैं। इनके बाद अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम लिया जा सकता है। इनके अलावा बालोपयोगी गीत एवं कहानियाँ लिखने वालों में ये नाम उल्लेखनीय हैं – दक्षिणारंजन मित्र मजूमदार, उपेन्द्र किशोर, राय चौधरी, योगीन्द्रनाथ बसु, सुकुमार राय, सुखलता राय और सुनिर्मल बसु।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र.10. बंगला नाटक के उद्‌भव और विकास की समीक्षा कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

प्राचीन काल में बंगाल में यात्रा की शैली पर नृत्य-गीत का अभिनय होता था। यानी आरम्भ में 'यात्रा' का प्रचलन था जो नाट्य - अभिव्यंजना का परमम्परागत देशीय लोकप्रिय रूप था। मूलत: यह संगीतमय प्रयोग होता था जिसमें नृत्य और मुद्राओं (मूक अभिनय) का भी उपयोग किया जाता था। धीरे -धीरे इसमें संवादों का समावेश किया जाने लगा - या तो इसलिए कि अभिनय को अधिक प्रभावोत्पादक बनाया जा सके, अथवा इसलिए कि वह जनता की इस माँग को पूरा कर सकें कि नाटक की पूरी बातें जनता की समझ में आनी चाहिए। रसास्वादन के लिए यह आवश्यक है कि प्रेक्षक कथावस्तु को भली प्रकार समझ सके। इस पप्रकार यात्रा ने क्रमश: कथानक, पात्र एवं संवाद से युक्त होकर नाटक का रूप ग्रहण कर लिया। संगीत का प्राचुर्य बराबर बना रहा। तीन - चार पात्र - पात्रियाँ गीत के अनुरूप गीतभंगी करके पौराणिक घटना विशेष का अभिनय करते थे। उस समय की भाषा में काछ काछते थे। उनन्हीं के ऊपर हास्य रस की सृष्टि का भार रहता था। इस प्रकार के अभिनय का सर्वप्रथल उल्लेख 16 वीं शताब्दी के आरम्भ में मिलता है। श्री चैतन्य ने अपने मौसा चन्द्रशेखर के घर पर रुक्मिणी-हरण का अभिनय किया थां। पाचाली के गान में गायक भवर डुलाना और अंगभंगी करता था, परन्तु नाटक का पूर्ण अभिनय नहीं हो पाता था, क्योंकि दूसरा अभिनेता नहीं होता था। कथानक (अंगभंगी सहित पौराणिक कथा कहना) के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

झूमुर यात्रा का पूर्वरूप था। इसमें केवल दो ही पात्र - पात्रियों में द्वैतगान और नाच चला करता था। बडू चण्डीदास का श्रीकृष्ण कीर्तन काव्य झूमुर नाट्यगीत का प्राचीनतम उदाहरण है।

पुरानी यात्राओं में कोई बँधे पार्ट नहीं थे। केवल पार्टी के गान निर्दिष्ट थे। शेष बातें अभिनेता स्वयं जोड़ लेता था। प्रधानत: कृष्णलीला विषयक पदों द्वारा उस समय नाटगीत हुआ करते थे और कृष्णलीला में भी कालिय दमन कहानी अधिक प्रचलित थी। इस प्रकार यात्रा अथवा कृष्ण यात्रा का दूसरा नाम ही कालिय दमन हो गया था। 19 वीं शताब्दी के आरम्भ में यात्रा विशेष रूप से साहित थी। श्रीदास और सुबल नामक दो भाइयों एवं परमानन्द अधिकारी ने यात्रा के प्रदर्शन में विशेष कौशल प्रदर्शित किया था। इनके बाद श्रेष्ठ यात्रा वाले गोविनन्द अधिकारी और कृष्ण कमल गोस्वामी आये। 19 वीं शताब्दी के दूसरे दशक में कलकत्ता प्रदेश में विद्यासुन्दर प्रदेश में विद्यासुन्दर नाटक का प्रचलन हुआ। जनता की रुचि इसके अनुरूप बनी।

2. बंगला रंगमंच और नाटक का उद्‌भव :-

19 वीं शताब्दी के आरम्भ तक दृश्य- विधान, यवनिका आदि से युक्क्त कोई व्यवस्थित मंच नहीं था। इसका प्रदर्शन वर्गाकार रंगशाला में होता था जिसके चारों और दर्शकों की भीड़ बैठती थी। इनमें धनी- मानी व्यक्तियों की अपेक्षा सामान्य जनता के लोगों की संख्या अधिक होती थी। नाट्य-व्यंजन का यह देशीय रूप नव - पप्रबुद्ध बुद्धिजीवियों की नाट्य अभिरुचि का तोष नहीं कर पा रहा था। वे कलकत्ता में और उसके पास अस्थायी रूप से बनाये गये रंगमंचों पर अंग्रेजी नाटकों के प्रयोग देखकर उस ओर आकर्षित होते थे। बंगला नाटक के इतिहास के आरम्भ की एक घटना स्मरणीय है वह है 1795 ई. में कलकत्ता में बंगला नाटक के रंगमंच की स्थापना। इसके संस्थापक एक आंग्लीकृत रूसी साइंस व्यवसायी हेरासिक लेबेदाय थे। इस रंगमंच पर अंग्रेजी कामदी 'डिसगाइज' और प्रहसन लव इज दी बैस्ट डॉक्टर के बंगला रूपान्तर खेले गये। सारी भूमिकाएँ बंगाली अभिनेता - अभिनेत्रियों द्वारा सम्पन्न की गयीं। संगीत में भारतचन्द्र की कुछ पंक्तियों का उपयोग किया गया। इसके बाद 1831 ई. में एक बंगाली सज्जन प्रसन्न कुमार ठाकुर ने एक निजी बंगला रंगमंच तैयार कराया। पर इसमें खेले जाने वाले समस्त नाटक अंग्रेजी नाटक थे। सन् 1835 ई. में श्याम बाजार, कलाकत्ता में रवीन्द्रचन्द्र बसु के घर में एक रंगमंच बनाया गया जहाँ विद्यासुन्दर की कथा अभिनीत हुई। 19 वीं शताब्दी के छठवें दशक तक योगेन्द्रचन्द्र गुप्त, तारचन्द शिकदर, हरचन्द्र घोष आदि कुछ नाटक लिख चुके थे। यद्यपि इन नाटकों का कोई साहित्यिक महत्व नहीं है तथा इतिहास की दृष्टि से उनका महत्व अथवा स्थान तो असंदिग्ध है। इस क्षेत्र में नेतृत्व का श्रेय भी योगेन्द्रचन्द्र एवं ताराचन्द्र को दिया जाना चाहिए। इस समय तक बंगला नाटक पथुरिया घाट के महाराजा यतीन्द्र मोहन ठाकुर और पइकपुर के राजा ईश्वरचन्द्र सिंह एवं प्रतापचन्द्र सिंह जैसे धनाढ्यों की दृष्टि आकर्षित कर चुके थे। संस्कृत - सम्प्रदाय के एक ब्राह्मण विद्वान रामनारायण कर्तरत्न अपने सामाजिक नाटकों का प्रकाशन करके अपने समकालीनों के कुछ आगे बढ़े। उनके नाटकों विशेषकर 'कुलीन - कुल - सर्वस्व' ने विषय के नयेपन और उपस्थापन को नई पद्धति के कारण एक हलचल - सी उत्पन्न कर दी। रामनारायण ने संस्कृत नाटकों का बंगला रूपान्तर किया जिनका अभिनय बहुत सफल रहा।

बंगला नाटक के उत्थान के विचार से मधुसूदन दत्त इस क्षेत्र में आये। उन्होंने पहला नाटक शर्मिष्ठा लिखा। इसकी वस्तु महाभारत से ली गयी और वह अंग्रेजी के नाटक की शैली

पर लिखा गया था। इसके बाद उन्होंने एक यूनानी लोककथा के आधार 'पद्‌मावती' तथा राजपूती इतिहास के एक कथानक एवं यूनानी प्रतिमान पर आधारित एक त्रासदी 'कृष्ण कुमारी' नाटक की रचना की। इसके अलावा उन्होंने अन्य दो छोटे –छोटे प्रसहन लिखे, जिन्हें समाज द्वारा पसन्द किया गया। नाट्य – कौशल एवं सामाजिक पक्षों का चित्रण इन नाटकों की विशेषताएँ थीं।

3. बंगला नाटक का उद्‌भव एवं विकास :-

यह निर्विवाद है कि प्राचीन यात्राओं से बंगला नाटक की उत्पत्ति नहीं हुई। बंगला नाटक की उत्पत्ति अंग्रेजी रंगमंच के प्रवर्त्तन के पश्चात् हुई। बंगला नाटकों के गठन पर संस्कृत एवं अंग्रेजी नाटकों का प्रभाव बना रहा।

बंगला नाटक के अभाव के कारण ही उस युग में बंगला नाट्यशाला सुप्रतिष्ठित नहीं हो सकी। इस अभाव को उस समय बहुत से व्यक्ति अनुभव करते थे। इस अभाव की पूर्ति की इच्छा से ही 19 वीं शताब्दी के चौथे – पाँचवे दशक में बंगला नाटक – रचना का सूत्रपात हुआ। नाटक के रूप में रचित पहला नाटक है विश्वनाथ न्यायरत्न द्वारा अनूदित 'प्रबोध – चन्द्रोदय'। इसका रचनाकाल है सन् 1839 ई.। अन्तिम जानकारी के अनुसार सन् 1849 ई. में प्रकाशित नीलमणि पाल की 'रत्नावली' नाटिका प्रथम मुद्रित बंगला नाटक है और प्रथम मौलिक नाटक है ताराचरण शिकदार का भद्रार्जुन (1852 ई.)। इसके पश्चात् सन् 1852 ई. से बंगला नाटक – रचना अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है।

प्रथम युग के बंगला नाटक अधिकांशत– संसस्कृत नाटकों की कथा के आधार पर लिखे जाते थे। मौलिक नाटकों की विषय–वस्तु पूर्णत: सामाजिक होती थी, जैसे – विधवा – विवाह, बहु – विवाह आदि। 1853 ई. में प्रकाशित हरिश्चन्द्र घोष का नाटक 'भानुमती चित्तविलास' शैक्सपीयर के नाटक 'मर्चेण्ट ऑफ दवेनिस' के आधार पर लिखा गया था। इसके बाद वियोगात्मक नाटक लिखे गये – कीर्ति विलास (योगेन्द्रचन्द्र 1852 ई. एवं विधवा – विवाह (उमेशचन्द्र 1857 ई.)।

इनके बाद महत्वपूर्ण नाम हैं – नन्दकुमार राय। इनका लिखा हुआ नाटक अभिज्ञान शांकुतलम् (1855 ई.) 30 जनवरी, 1897 ई. को आशुतोष देव के घर में अभिनीत हुआ। मुद्रित बंगला नाटक का यह प्रथम अभिनय था।

बंगला नाटक के आदि – युग के प्रधान नाटककार हैं रामनारायण तर्करत्न, माईकेल मधूसूदन दतत्त। सन् 1858 में माईकेल मधुसूदन दत्त का नाटक 'शर्मिष्ठा' प्रकाशित हुआ। यह बंगला का प्रथम उत्कृष्ट नाटक कहा जाना चाहिए। मधुसूदन दत्त ने कई नाटक और प्रहसन लिखे। मधुसूदन दतत्त के बाद उल्लेखनीय नाम है दीनबन्धु मित्र। इनको बंगला का एक अति श्रेष्ठ नाटककार कहा जाता है। दीनबन्धु के नाटक नीलदर्पण ने नील मजदूरों को आन्दोलित कर दिया। निलई साहबों के विरुद्ध आन्दोलन काफी उग्र था। उसका प्रभाव इंग्लैण्ड तक हुआ। अन्तत: निलहों का अत्याचार प्रशामित हो गया।

दीनबन्धु मित्र के कई नाटक प्रकाशित हुए। ये अधिकांशत: हास्यरस प्रधान नाटिकाएँ है अथवा प्रहसन हैं। इनके दो नाटक उच्च कोटि के माने जाते हैं – 'नील दर्पण' और 'सधवा की एकादशी'। दीनबन्धु मित्र वस्तुत: बंगला के श्रेष्ठ नाटककारों की पंक्ति में विराजमान हैं।

1860 ई. के बाद बंगला में कई नाटककार उभरकर आये और उनके नाटक प्रकाशित होते रहे। इनमें उल्लेख्य हैं – रामाभिषेक (1867), प्रणय परीक्षा (1869) तथा सती नाटक (1873)।

द्वितीय युग अथवा 19 वीं शताब्दी का आरम्भ बंगला में व्यंग्य रचनाओं से भरपूर है। प्रसिद्ध नाटककार हैं – भवानीचरण वन्द्योपाध्याय, टेकचाँद ठाकुर, प्यारचाँद मित्र (छद्‌मनाम) तथा काली प्रसन्न सिंह। बंगला नाटक के मध्ययुग के प्रसिद्ध नाटककार हैं – रवीन्द्रनाथ, गिरीशचन्द्र, अमृतलाल तथा उनके सहयोगी।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र.11. बंगला के आधुनिककालीन उपन्यास - साहित्य का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर :- उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में उपन्यास की रचना में श्रीशचन्द्र मजूमदार ने नवीनता की अवतारणा की। इनकी गद्य – शैली जितनी आडम्बर शून्य है, उतनी ही हृदयग्राहिणी है। बीसवीं सदी के आरम्भ में उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले लेखकों में दो लेखकों ने असाधारणता दिखाई – ये हैं राखलदास वन्द्योपाध्याय (1884–1930 ई.) और शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय। राखलदास के अधिकांश उपन्यास ऐतिहासिक हैं। इन उपन्यासों – में गुप्त, पाल और मुगल युगों के इतिहास को सजीव बनाकर पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यास से जिस वस्तु का बोध होता है उसको बंगला में एकमात्र राखलदास ने व्यक्ति किया है। हरप्रसाद की रचना बेनेर मेच्चे (बनिये की बेटी) इस श्रेणी की एक उपादेय रचना है।

आधुनिक काल में सर्वाधिक जनप्रिय उपन्यासकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय हैं। साहित्य में इनका आविर्भाव जिनता आकस्मिक माना जाता है, उनकी रचनाओं का समादर भी उतना ही अप्रत्याशित है। सन् 1907 ई. में उनके उपन्यास चरित्रहीन का कुछ अंश 'यमुना' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। शरतचन्द्र की सबसे प्रमुख विशेषता है दु:खी – दरिद्र पीड़ित के प्रति निरन्तर सहानुभूति। उनकी यह सहानुभूति स्वानुभूति प्रसूत है। उन्होंने जिस सहानुभूति को अपने मन और प्राणों में अनुभव किया उसी को उन्होंने मनोज्ञ भाषा में प्रकट किया है। रवीन्द्रनाथ के उपन्यासों में जो सहानुभूति व्यक्त हुई है, उसमें शरत् जैसी तीव्रता का अभाव है। रवीन्द्रनाथ वसस्तुत: श्रेष्ठ रस – सृष्टा हैं – वह मूलत: कवि हैं। उनकी रस – सृष्टि से हमारी आत्मा का सौन्दर्य बोध चरितार्थ होता है, परन्तु शरतचन्द्र हमारे प्रतिदिन के जगत के स्थूल मन को सब समय तृप्त करते हैं। शरतचन्द्र की रचनाओं में काव्य – रस की अपेक्षा कथा का मोह अधिक दिखाई देता है।

बंगला के अति – आधुनिक कवियों में आधुनिक युग की बेचैनी व्यक्त हुई है, परन्तु यह उपन्यास लेखक न्यूनाधिक तौर पर रवीन्द्रनाथ और शरतचन्द्र की परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं। शरतचन्द्र के बाद विभूतिभूषण बनर्जी ने बंगला के कथा साहित्य को अपने उपन्यासों का योगदान प्रदान किया है, विशेषकर 'आरण्यक' और 'पाथेर पांचाली' द्वारा। ध्यातव्य है कि 'पाथेर पांचाली' पर बनी फिल्म ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की है।

विभूतिभूषण प्रकृति एवं ग्राम्य जीवन के अनन्य प्रेमी हैं। उनका ग्राम्य एवं प्रकृति प्रेम उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है। जीवन और चरित्र का संघर्ष आधुनिक उपन्यासकारों का प्रिय विषय रहा है, किन्तु विभूतिभूषण को आधुनिक उपन्यासकार के रूप में स्वीकार करने में संकोच करते हैं, परन्तु उनको एक महान लेखक मानने के सम्बन्ध में प्राय: सब एक महान लेखक मानने के सम्बन्ध में प्राय: सब एकमत हैं। उनकी महानता का रहस्य है प्रकृति के साथ मनुष्य के दैनिक सम्बन्ध की उनकी समझ और उसकी अभिव्यंजना के मामले में उनकी रचनाओं में बड़ी हार्दिकता दिखाई देती है। बंगला साहित्य के आधुनिक उपन्यासकारों को सामान्यत: तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है; यथा –

पहला वर्ग :-

उन उपन्यासकारों का है जिन्होंने रवीन्द्रनाथ और शरतचन्द्र की परम्परा का न्यूनाधिक रूप में निर्वाह किया है। हमारे विचार से सर्वाधिक संख्या में उपन्यासकार इसी वर्ग के हैं। इस वर्ग के उपन्यासकारों में प्रसिद्ध नाम हैं – शैलजानन्द मुखर्जी, प्रेमेन्द्र मित्र, महबुबल आलम (चटगांव) वनफूल, अन्नदाशंकर राय, ताराशंकर वन्द्योपाध्याय, सरोज राज चौधुरी, विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, सुबोध घोष, नारायण गंगोपाध्याय, सतीनाथ भादुड़ी, नरेन्द्र मित्र और आशापूर्णा देवी। माणिक वन्दद्योपाध्यय भी परम्परावादी के रूप में प्रसिद्ध हुए परन्तु बाद में वामपंथी विचारों के प्रति आग्रही हो गये। शैलजानन्द एक उत्तम कलाकार हैं। उनके उपन्यासों में बंगाली जीवन का बहुत ही निकटस्थ रूप चित्रित किया गया है। आदिवासी जनता के विषय में उनके द्वारा उकेरे हुए चित्र – अति – उत्तम कोटि के माने जाते हैं।

प्रेमेन्द्र मित्र के उपन्यासों में भी हमको यही विशेषता मिलती है, परन्तु थोड़े भिन्न रूप में। निम्न कहे जाने वाले लोगों के जीवन को उन्होंने बहुत निकट से देखा है और तदनुसार उसका वर्णन किया है।

मेहबुबल आलम की सर्वोत्तम कृति है 'मोसिनेर जबान बन्दी (ईमान्दार की आत्म – स्वीकृति)। जीवन जैसा है उसको ज्यों–का–त्यों देखने में और उसका वर्णन उसी रूप में करने में उनको आनन्द आता है। वह जीवन को किसी विशेष प्रकार के चश्मे से देखने का प्रयत्न नहीं करते हैं। उनके अन्दर पर्याप्त ओज है, परनन्तु पता नहीं, उन्होंने इतना कम क्यों लिखा है।' वनफूल भी मेहबुबल आलम की भाँति ओजपूर्ण उपन्यासकार हैं। अनन्दाशंकर आधुनिक

उपन्यासकारों में सर्वाधिक महत्वाकांक्षी प्रतीत होते हैं। उन्होंने एक वृहदाकार उपन्यास लिखा है जो छः खण्डों में है, परन्तु उनकी प्रतिभा कहानियों में अधिक मुखर हुई है।

तारांशकर वन्द्योपाध्याय नवीन उपन्यासकारों में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। उन्होंने प्रादेशिक जीवन को बड़े परिमाण में चित्रित किया है और ऐसा करने में उनको अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। उनकी वर्णन शैली फोटोग्राफर जैसी है यानी वह वर्ण्य –विषय को यथातथ्य रूप में उपस्थित कर देते हैं। उक्त दोनों कारणवश इन्हें इतनी सफलता प्राप्त है। सरोज राय चौधुरी ने हमारे लिए एक नया 'फोरसारह जोगा' (गाल्सवर्दी का पीढ़ियों तक चलने वाला चरित्र-प्रधान उपन्यास) लिखा है।

विभूतिभूषण मुखोपाध्याय हास्य रस के भी अच्छे लेखक हैं। सुबोध घोष सशक्त तूलिका से 'टिपिकल' चरित्र व्यक्त करते हैं। सतीनाथ भादुड़ी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को पूरे मनोयोग के साथ प्रकट करते हैं। नरेन्द्र मित्र बंगाल के दैनिक जीवन का चित्रण कलापूर्म ढंग से एवं विवेक के साथ करते हैं।

आशापूर्णा देवी जीवन की छोटी – छोटी विडम्बनात्मक घटनाओं को विशेषतः बंगाल के मध्यवर्गीय जीवन का सजीव चित्रण करती हैं। विशेषता यह है कि समस्त वर्णन सुरुचिपूर्ण पद्धति पर किये गये हैं। यथार्थ का वर्णन करते समय वह भोड़ेपन को बचाकर चलती हैं, क्योंकि जीवन में किसी प्रकार की असंगति अथवा भोंडापन उनको सहन नहीं है। वह नारी की आत्मा के वे चित्र अंकित करती हैं जिनमें वह विभृत और एकान्त पसन्द करती है।

द्वितीय वर्ग : उन उपन्यासकारों का है जो आधुनिक यानी रोमांटिक हैं। इस वर्ग के उपन्यासों में उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं – प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव बसु, अचिंत्स सेन गुप्त, मौनीन्द्र पाल बसु और प्रमोद कुमार सान्याल। इनमें प्रेमेन्द्र मित्र को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

तीसरा वर्ग : है वामपंथी उपन्यासकारों का इनमें अग्रणी है माणिक वन्द्योपाध्या। इनका उपन्यास मुतुल नामेर इतिकला (कठपुतली के नाच की कहानी) बहुत प्रसिद्ध है। उसमें इन्होंने अपने आपको एक ऐसे पक्के कलाकार की भाँति प्रस्तुत किया है जिसका जीवन के प्रति भग्नांश दृष्टिकोण है। माणिक वन्द्योपाध्याय स्त्री – पुरुष प्रेम को व्यक्त करते हैं और उनमें सन्तोष का अनुभव भी करते हैं। अपने वामपंथी धारा के लेखन में वह एक औसत दर्जे के उपन्यासकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। जीवन के प्रति अपनी कड़वाहट को उन्होंने अच्छी अभिव्यक्ति प्रदान की है।

माणिक वन्द्योपाध्याय के बाद इस क्षेत्र के अमरेन्द्र घोष का नाम लिया जाता है। उनका उपन्यास 'चार काशेम' एक स्मरणीय कृति है, जैसे कि यूरोप में 'ग्रोथ ऑफ द सायल'। अमरेन्द्र घोष की जो विशेषता इनकी रचनाओं में उभरकर आयी है, वह है – उनका मानवतावाद। वामपंथी की अपेक्षा वह अधिक मानवतावादी हैं जबकि वामपंथी सामान्यत: समाज के एक वर्ग विशेष में अपने को सीमित कर देते हैं।

इनके अलावा कुछ तरुण वामपंथी लेखक भी हमारे सामने आते हैं; जैसे समरेश बसु और गुलाम कुद्दूस। इन दोनों लेखकों का आज के जीवन से निकट परिचय है, जिसको उन्होंने सशक्त रूप में चित्रित किया है। वामपंथी प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं गोपाल हालदार, जिनकी उपन्यासत्रयी – एकदा, अन्य दिन और एक दिन उल्लेखनीय है। वामपंथी रचनाओं में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र.12. बंगला भाषा के कहानी साहित्य पर विचार प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर :- बंगला की कहानी का क्रमबद्ध इतिहास 19 वीं शताब्दी के अन्तिम चरण से आरम्भ होता है। इस विधा के आरम्भिक लेखकों में श्रीशचन्द्र मजूमदार का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है, विशेषकर लम्बी कहानी लेखक के रूप में।

छोटी कहानी के क्षेत्र में हमको कई लेखक मिलते हैं और इनमें कई महत्वपूर्ण भी हैं। इसका श्रेय रवीन्द्रनाथ को है। बंगला साहित्य की कथा के लेखक **डॉ. सुकुमार सेन** के शब्दों में ''रवीन्द्रनाथ की छाया में गल्पों की फसल बंगला साहित्य में जैसी हुई है, वैसी काव्य, नाटक अथवा उपनन्यास किसी भी विषय में नहीं हुई।'' (पृ. 167–168)। प्रसिद्ध कहानी लेखकों में प्रमुख नाम हैं – प्रभात कुमार मुखोपाध्याय, सुधीन्द्रनाथ ठाकुर, त्रैलोक्य नाथ मुखोपाध्याय तथा शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय।

प्रभात कुमार मुखोपाध्याय की कहानियाँ आडम्बर शून्य र मधुर होती हैं। रवीन्द्रनाथ के बाद बंगला गल्प लेखक के रूप में प्रभात कुमार मुखोपाध्याय का नाम लिया जाता है।

सुधीन्द्रनाथ ठाकुर गल्प – लेखन में अपने शैलीगत कौशल के कारण जाने जाते हैं। त्रैलोक्यनाथ मुखोपाध्याय बंगला साहित्य में अद्‌भुत रस के सृष्टा हैं। त्रैलोक्यनाथ की 'मुक्तमाला' और डमरू चरित बंगला साहित्य के नवीन अलिफ लैला हैं। थोड़े से आयोजन से निर्मल हास्य की सृष्टि करने में त्रैलोक्यनाथ बहुत सफल हैं। **डॉ. सुकुमार सेन** के शब्दों में, ''थोड़े से आयोजन से निर्मल हास्य की सृष्टि करने में अभी तक त्रैलोक्यनाथ का समकक्ष कोई आविर्भूत नहीं हुआ है। यह करुण रस का समावेश करने में भी विसेष दक्ष हैं। इसका प्रमाण इनका उपन्यास 'मंथना कोथाय' (मैना कहाँ) है।'' *(पृ. 168 बंगला साहित्य की कथा।)* शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय आधुनिक काल के बंगाल में सबसे अधिक जनप्रिय कहानी लेखक।

डॉ. सुकुमार सेन के शब्दों में, ''शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय महाशय का साहित्य में आविर्भव जितना आकस्मिक है, उनकी रचनाओं का समादर भी उतना ही असम्भावित है। *(पृ. 168, बंगला साहित्य की कथा।)* उनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'बड़ी दीदी' भारतीय पत्रिका में प्रकाशित हुई थी (सन् 1007 ई.)। इसके तीन – चार वर्ष पीछे 'यमुना' पत्रिका में बिन्दुर छेले (विन्दो का लल्ला), रामेर सुमति (राम की सुमति) प्रभृति कई छोटी – बड़ी कहानियाँ प्रकाशित हुई। इनके बाद वह बंगला कथा साहित्य के सिरमौर बन गये। विराज बहू, अरक्षणी पल्ली समाज, श्री काम्बेर भ्रमण कहानी (श्रीकान्त की भ्रमण कथा) इत्यादि कहानियाँ एक के बाद एक

प्रकाशित होती गयीं। मृत्यु के कुछ दिनों पहले तक शरतचन्द्र अजस्र रूप से लिखते रहे। उनके कथा साहित्य ने बंगाल के पाठकों के ऊपर जादू सा डाल दिया था।''

अन्तिम दिनों में उनकी कला ह्रासोन्मुख हो गयी थी। यह स्वीकार पड़ेगा कि शरत् को एक श्रेणी विशेष के पाठकों एवं साहित्यानुरागियों की नब्ज की अच्छी पहचान थी। शरतचन्द्र की शैली यद्यपि रवीन्द्रनाथ की शैली पर आधारित है, तथापि इसमें शरतबाबू की मौलिकता की छाप दिखाई देती है।

शरतचन्द्र का अनन्य साधारण विशेषत्व दु-खी - दरिद्र- पीड़ित के प्रति निरन्तर सहानुभूति है। यह सहानुभूति किसी अन्य की छाया नहीं है, वह स्वयं उनके द्वारा भोगी हुई स्वानुभूति है। दूसरे स्वानुभूति को शरतचन्द्र मनोज्ञ भाषा में व्यक्त करते हैं। रवीन्द्रनाथ में उच्च कोटि की सहानुभूति के दर्शन होते हैं, 'पर वह एकान्त रूपेण कवि हैं, उनके चित्र का प्रसार नि:सीम, वृहत् और व्यापक है। उन्होंने जिस दु:ख - वेदना को अनुभव करके काव्य, गल्प तथा उपन्यासों में प्रतिबिम्बित किया, वह तीव्रता से बिल्कुल शून्य है, वह रस है। रवीन्द्रनाथ श्रेष्ठ रस - स्रष्टा है, उनकी रस - सृष्टि से हमारी आत्मा का सौन्दर्य - बोध चरितार्थ होता है, किन्तु उससे हमारे प्रतिदिन के जगत का स्थूल मन सब समय तृप्त नहीं होता। रवीन्द्रनाथ के गल्प गुच्छों में हमें प्रधानत: एवं प्रचुर मात्रा में काव्य - रस मिलता है। शरतचन्द्र की श्रेष्ठ रचनाओं में भी यही वस्तु पायी जाती है, पर यथेष्ट तरल रूप में एवं उनकी अधिकांश जनप्रिय रचना में काव्य - रस जितना ही कम है, उतना ही कथा का मोह अधिक है।' *(पृ. 169-170, बंगला साहित्य की कथा, डॉ. सुकुमार सेन)।*

शरतचन्द्र मानो स्वयं उस वर्ग के व्यक्ति हैं जिनके सुख - दु:ख का चित्रण वह करते हैं। यह संवेदना शरतचन्द्र के साहित्य की मूल बात है। शरतचन्द्र द्वारा चित्रित पात्र पंचमेल सामान्य मनुष्य हैं, जो भलाई - बुराई से घिरे दरिद्र लोग हैं। ऐसे लोगों के साथ निकटस्थ परिचय रखने के कारण शरतचनद्र अपने पाठकों के मन पर सहज भाव से अधिकार कर लेते हैं। धनी अथवा अभिजात समाज की अभिज्ञता शरतचन्द्र को नहीं थी। इसी कारण वह सामान्यजन का अंकन इतनी सहजता से कर सके हैं। इस कारण उनकी कहानियों में पुनरावृत्ति का दोष आ गया है। उनके पात्र प्राय: एक ही प्रकार के रहते हैं। शरतचन्द्रोत्तर कहानीकारों को प्राय: तीन वर्गों में विभक्त करके देखा जाता है; यथा -

(क) वे कहानीकार जिन्होंने न्यूनाधिक रूप में रवीन्द्रनाथ एवं शरतचन्द्र की परम्परा का अनुसरण किया। इनमें प्रमुख हैं – शैलजानन्द मुखर्जी, सुमेन्द्र मित्र, मेहेबूबल आलम, वनफूल, अन्नदाशंकर राय, ताराशंकर वन्दोपाध्याय, सतीनाथ भादुड़ी, नरेन्द्र मित्र, विभूतिभूषण मुखोपाध्याय और आशापूर्णा देवी।

(ख) वे लेखक जो अति – आधुनिक यानी रोमांटिक हैं। इस वर्ग के प्रमुख कहानीकार हैं – प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव बसु, अचिंत्य सेन गुप्त, मौनीद्र पाल बसु, मनोज बसु और प्रबोध कुमार सान्याल।

(ग) तीसरे वर्ग के अन्तर्गत वामपंथी लेखकों को रखा जाता है। इनमें प्रमुख हस्ताक्षर हैं – सरदेश बसु और गुलाम कुद्दूस।

माणिक वन्द्योपाध्याय पहले परम्परावादी वर्ग में थे और इसी रूप में उनको प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी, प्रस्तु बाद में वह वामपंथी बन गये, यहाँ तक कि वह वामपंथी कहानीकारों के भी नेता बन गये।

रोमांटिक लेखकों में प्रेमेन्द्र मित्र सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। रवीन्द्रनाथ और शरतचन्द्र के बाद कहानियों के वह ही कदाचित सर्वश्रेष्ठ लेखक हैं। अशीम राय एक तरुण उदीयमान रोमांटिक लेखक हैं। माणिक वन्दोपाध्याय ने वामपंथी लेखक के रूप में कुछ विशेष ख्याति अर्जित नहीं की, इतना अवश्य है कि अपनी कहानियों में उन्होंने समाज के प्रति अपनी कड़वाहट प्रकट की है।

वामपंथी कहानी लेखकों में माणिक वन्दोपाध्याय के बाद अमरेन्द्र घोष का नाम लिया जाता है। इनके बारे में यह तथ्य ध्यातव्य है कि वह वामपंथी की अपेक्षा मानवतावादी अधिक है। शैलजानन्दन ने बंगाल के जीवन को पूरे मनोयोग के साथ अपने उपन्यासों में अंकित किया है, परन्तु प्रेमेन्द्र मित्र की भाँति इनकी प्रतिभा कहानियों में अधिक अच्छी तरह व्यक्त हुई है। यह विकसनशील सौन्दर्य के कलाकार हैं। बंगला के कहानी – क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन सुखद है। यह विकसशील सौन्दर्य के कलाकार हैं। बंगला के कहानी – क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन सुखद है। यह बंगाली के कहानी साहित्य के उज्वल भविष्य का लक्षण है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र. 13. बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ के योगदान प्रकाश डालिए।

1. प्रस्तावना :-

रवीन्द्रनाथ का जन्म सन् 1861 ई. में वैशाख शुक्ल 10 वीं को कलकत्ता में लोड़ासांकों में एक सम्पन्न एवं सुसंस्कृत परिवार में हुआ। आपकी शिक्षा औपचारिक रूप से किसी विद्यालय में नहीं हुई। आपने घर पर निजी तौर पर संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला भाषाओं एवं साहित्य का अध्ययन किया। 17 वर्ष की अवस्था में आप लन्दन गये और वहाँ कुछ समय तक यूनिवर्सिटी कॉलेज में पढ़े। वहाँ संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के अलावा आपने विज्ञान और भाषा – विज्ञान में भी शिक्षा प्राप्त की।

2. साहित्य - साधना :-

साहित्य के प्रति आपकी रुचि बाल्यकाल से ही थी। 12–13 वर्ष की अवस्था में ही रवीन्द्रनाथ ने गद्य–पद्य में लिखना आरम्भ कर दिया था। इनकी प्रथम रचना – 'वनफूल ग्रन्थ' का अंश सन् 1875 में ज्ञानांकुर पत्रिका में छपा और 4 वर्ष बाद पुस्तकाकार होकर प्रकाशित हुआ। उनकेप्रथम गद्य– प्रबन्ध (समालोचना) भुवन मोहिनी प्रतिभा, अवसर सरोजिनी और दु:ख संगिनी – ज्ञानांकुर में सन् 1876 में प्रकाशित हुए। रवीन्द्रनाथ का द्वितीय काव्य कवि काहिनी (कवि कहानी) वनफूल के पश्चात् लिखा जाने पर भी उससे कुछ दिन पहले प्रकाशित हो गया। सन् 1877 में द्विजेन्द्रनाथ ने भारती पत्रिका में रवीन्द्रनाथ ने विद्यापति गोविन्ददास आदि वैष्णव कवियों के अनुकरण पर ब्रजबली में कुछ पदों की रचना की जो 'मानसिंह ठाकुर की पदावली' के नाम से प्रकाशित हुए। इसके बाद रवीन्द्रनाथ ने प्रथम गीतिनाट्य 'वाल्मीकि प्रतिभा' की रचना की। सन् 1882 ई. में सांध्यगीत प्रकाशित हुआ। इस रचना में कवि रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा प्रथम बार परिलक्षित हुई। इसके साथ रवीन्द्रनाथ ने आख्यायिका काव्य की रचना छोड़ दी। इसके बाद आप उपन्यास के प्रति उन्मुख हुए। सन् 1876 व 1877 के भारती अंकों में आपका प्रथम उपन्यास 'करुणा' प्रकाशित हुआ। इनका द्वितीय उपन्यास बैठाकुरानीहाट (बहू ठकुरानी की हाट) सन् 1883 में छपा।

इसके पश्चात् आपका काव्य 'कड़िओ कोमल' सन् 1886 में प्रकाशित हुआ। इस काव्य में रवीन्द्रनाथ के हृदयावेग की अस्फुरता का स्थान सुनिश्चित भाव – प्रवणता ने ले लिया और भाषा एवं छन्द भी संयत हो गये। कहने का तात्पर्य यह है कि इस रचना के साथ रवीन्द्रनाथ की

काव्य के भावपक्ष एवं कलापक्ष में परिपक्वता आ गयी। इसी समय कवि की कविताओं का संग्रह **मानसी** का प्रकाश हुआ। इस समय कवि का पूर्ण यौवन था और मानसी की कविताओं में कवि की प्रेमभावना पूर्ण प्रकर्ष पर दिखाई दी। कवि का अगला कविता संग्रह प्रकाशित हुआ **सोनारतरी** (सोने की नाव) जिसमें सन् 1891 के अन्त से लेकर सन् 1893 तक के मध्य भाग तक रची हुई कविताएँ संकलित हैं। इस बीच में यानी मानसी और सोनारतरी के प्रकाशन – काल के मध्य कवि की रचना 'चित्रांगदा' नामक नाट्य – काव्य प्रकाशित हो गया था।

सन् 1891 ई. में रवीन्द्रनाथ ने अपने भतीजे सुधीन्द्रनाथ के सम्पादकत्व में 'साधना' नामक पत्रिका प्रकाशित की। डॉ. सुकुमार सेन के शब्दों में, ''रवीन्द्र की प्रतिभा उस समय मध्याह्न गगन में थी, कविता, गान, गल्प, प्रबन्ध सभी क्षेत्रों में उस समय रवीनन्द्र की प्रतिभा रचना की प्रचुरता से अजस्त्र – धारा में बहने लगी, 'साधना' के पन्ने – पन्ने पर रवीन्द्रनाथ गद्य–पद्य की जोड़ी हाँकने लगे। *(पृ. 100, बंगला साहित्य की कथा)*''।

सन् 1889 में रवीन्द्रनाथ ने आधुनिक बंगला साहित्य में छोटी–छोटी गल्पों की रचना की और बंगला में एक नवीन विधा का प्रवर्तन किया। बंगला में यह विधा आज भी प्रबल वेग पर है। यहाँ यह बता देना अप्रसंगिक नहीं होगा कि रवीन्द्रनाथ के पहले बंकिमचन्द्र, आदि कई लेखकों ने बंगला में गल्पें लिखी थीं, परनन्तु वे अपेक्षाकृत लम्बी थीं – वे अंग्रेजी की Short Story की जाति की नहीं थीं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि रवीन्द्रनाथ संसार के श्रेष्ठातम गल्प लेखकों में गिने जाते हैं। 'साधना' के अलावा हितवादी, बंगदर्शन पत्रिका प्रवासी पत्रिका तबसबुन पत्र में रवीन्द्रनाथ की अनेक छोटी गल्पें प्रकाशित हुई। 'सोनारतरी' में कवि के काव्य में बुद्धिमत्ता और आध्यात्मिक भाव की सूचना मिली। यह प्रवृत्ति चित्र, चैताली, कल्पना प्रभृति परवर्ती काव्यों के स्फुटतर रूप को प्राप्त होता गया। रवीन्द्रनाथ के गद्य में भी हमको यही स्थिति देखने को मिलती है। इस समय रचित गलल्पों और प्रबन्धों में रवीन्द्र ने विचित्र प्रकार के भाषा के इन्द्रजाल की सृष्टि की। पद्य के समान गद्य भी सुषमायुक्त और छन्दोमय हो गया। सन् 1900 में प्रकाशित 'क्षणिका' काव्य में रवीन्द्रनाथ का स्वर एकदम बदल जाता है। भाषा और अलंकार का आडम्बर एकदम कम हो जाता है। इस समय कवि मुक्ति के आनन्द की अनुभूति करने लगा था।

इसके बाद रवीन्द्रनाथ में भक्ति – भाव प्रगाढ़ होता है जो कवि की गीतांजलि की कविता और गानों में विशेष श्रेष्ठता एवं प्रगाढ़ता के साथ व्यंजित हुआ।

इसी के साथ इनके दो काव्य आते हैं – रवैया (1906) और गीतांजलि डॉ. सुकुमार सेन शब्दों में, ''गीतांजलि श्रेष्ठ काव्य न होते हुए भी अंग्रेजी में अनुवादित होकर नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने योग्य बन गया और अन्य समस्त रचनाों की अपेक्षा अधिक विख्यात हो गया।'' *(पृ. 162, बंगला साहित्य की कथा)।* इसी प्रकार इनका गीतों का एक अन्य संग्रह है गीतिमाल्य। 'गीतांजलि' और 'गीतिमाल्य' दोनों के गानों में बाउल गान का प्रभाव लक्षित होता है।

सन् 1886 में रवीन्द्रनाथ का तीसरा उपन्यास राजर्षि प्रकाशित हुआ। इसके बाद कई वर्षों तक वह छोटी गल्पों और प्रबन्धों की रचना करते रहे।

वर्ष 1906–07 ई. में उनके चौथे और पाँचवें उपन्यास – चोखेर वालि (आँख की किरकिरी) तथा नौका डूबी प्रकाशित हुए।

वर्ष 1911–12 ई. में उनकी जीवन – गाथा जीवन – स्मृति प्रकाशित हुई।

इसके बाद कवि के काव्य–जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। श्रेणीबद्ध प्रचार छन्द में भक्ति – मूलक आध्यात्कि कविता लिखने लगे, जिसका मूल स्वर चिन्तामूलक था और जिसकी शैली वर्णनात्मक थी। साथ – साथ उन्होंने अनेक गल्पें, लिखीं और छठवां उपन्यास 'घरे बाहिरे' प्रकाशित किया। इनके अन्य काव्य – संग्रह इस प्रकार हैं – योगायोग, शेषेर कविता, पलात का, पूरबी, प्रवाहिनी, शिशु भोलानाथ, महुआ, वनवाणी, परिशेषे, पुनश्च, वीथिका, पत्रपुर, संतुति आन्तिक और आकाशदीप।

अपनी रचनाओं के माध्यम से रवीन्द्रनाथ बंगला साहित्य में नई शोभा लाये, जिससे बंगला साहित्य का स्वरूप ही बदल गया।

3. रवीन्द्रनाथ के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ :-

आपके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

(i) रवीन्द्र के काव्य में विषय –वस्तु– चाहे वह बहि: प्रकृति हो अथवा कोई भाव या आइडिया, कवि के हृदय में जो प्रतिक्रिया उपस्थित करती है, उसी की अनुभूति का प्रकाशन है। जबकि पूर्ववर्ती कवियों के काव्य में विषय –वस्तु का ही प्रतिबिम्ब प्रतिफलित हुआ है।

(ii) रवीन्द्र द्वारा प्रवर्तित काव्य – धारा में कवि – चेतना ने विषय – वस्तु में ओतप्रोत होकर एक अखण्ड रूप लिया है।

(iii) रवीन्द्रनाथ की रीति हरिक खण्ड के समान वस्तु निरपेक्ष होकर अपूर्व वर्ण छटा विकीर्ण करती है।

(iv) रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित काव्य – रीति ही बंगला में अप्रतिद्वन्द्वी भाव से बराबर चली आ रही है। जो कुछ अपवाद हैं वे बतौर प्रयोग – एक्सपेरीमेण्ट हैं, कुछ नई बात कहने और कुछ नया करने के समान हैं।

रवीन्द्रनाथ ने बंगला साहित्य की प्रत्येक विधा कविता, उपन्यास, कहानी, गल्प, निबन्ध को समृद्ध किया। 'नाटक' का पक्ष अवश्य कुछ दुर्बल है। 19 वीं शताब्दी के अन्त में बंगला साहित्य पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव अनुभव होने लगा था। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में वह प्रभाव एकछत्र हो गया।

Lesson Wrtier

डॉ. शेख मौला अली

प्र.14. बंगला भाषा में गद्य साहित्य के उद्‌भव और विकास परिचय दीजिए।

1. प्रस्तावना :-

अठारहवीं शताब्दी को उत्तरार्द्ध की युगसन्धि में बंगला में गद्य-रचना का सूत्रपात माना जाता है, परन्तु अनेक गाथाएँ और कहानियाँ एवं पांचालियाँ काफी पहले से चली आयी थीं। शिवोपासक योगी पप्रकट करने वाली अलकिक कहानियाँ अथवा गद्य बंगला में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचिलत रही थीं। इन कहानियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - (1) मीननाथ - गोरक्षनाथ की कहानी, एवं (2) गोविन्द चन्द्र की कहानी। इन दोनों कहानियों को सारांश रूप में प्रस्तुत करने के उपरान्त **डॉ. सुकुमार सेन** ने लिखा है कि '' इस कहानी के मूल में सम्भवत: कुछ ऐतिहासिक घटना थी, किन्तु अब तो गल्प में से ऐतिहासिक अंश को निकाल लेना असाध्य हो गया है।'' बंगलादेश की मिनी कथावस्तु गोविन्द चन्द्र के संन्यास की करुण कहानी बंगला की सीमा छोड़कर बहुत दूर चली गयी है। सुदूर पंजाब, सिन्धु, महाराष्ट्र, राजपूताना, प्रभृति प्रदेशों में इसी गाथा को गाकर आज भी योगी - संन्यासी भिक्षा माँगते घूमते हैं। किन्तु बंगाल में, उत्तर बंग को छोड़कर अन्य प्रदेशों में गोविन्द चन्द्र की कहानी लुप्त हो गयी है। प्राप्त गाथाओं में जो सबसे प्राचीन है, वह पश्चिम बंग के दुर्लभ मल्लिक की रचना है। सहदेव चक्रवर्ती के अनिल पुराण में मीननाथ और गोरक्षनाथ की कहानी कवीन्द्र और शेख फैजुल्ला रचित 'गौरक्ष विजय' उत्तर - पूर्व बंग में मिली है। भवानीदास और सुकूर मुहम्मद की पांचाली उत्तर बंग में उपलब्ध हुई है। इन दोनों का रचनाकाल 19 वीं शताब्दी का आरम्भ होना चाहिए।

सन् 1757 ई. में प्लासी युद्ध के पश्चात् कुछ ही समय में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने पूरे देश की राज शक्ति को हस्तगत कर लिया और इसी के साथ भारत में सामान्य रूप से तथा बंगाल में गद्य-रचना आरम्भ हो गयी थी। इस दिशा में ईसाई मिशनरियों के अलावा स्थानीय पंडित लोग भी साहित्य और गद्य में रचनाएँ कर रहे थे। इस दिशा में ईसाई मिशनरियों के अलावा स्थानीय पंडित लोग भी साहित्य और गद्य में रचनाएँ कर रहे थे। आरम्भिक शिक्षार्थियों के लिए 19 वीं शताब्दी में स्मृति और न्यायशास्त्र के बंगला में अनुवाद का कार्य आरम्भ हो गया था। वैद्यों ने चिकित्सा सम्बन्धी कुछ पुस्तकें बंगला में लिखी थीं। परन्तु शासन के सहयोग के अभाव में - यानी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अभ्युदय के पहले - यह कार्य बहुत ही सीमित रूप में हो सका। कानून, अदालत का काम भी सामान्य रूप से बंगला में होने लगा। प्रशासन

की आवश्यकता की दृष्टि से यह भी आवश्यक था कि बंगाली को अंग्रेजी तथा अंग्रेजों को बंगला सिखायी जाये। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए कोश एवं व्याकरण – ग्रन्थों की रचना की जाने लगी।

केवल हाथ से लिखकर यह कार्य करना अत्यन्त कठिन था। अत: आवश्श्यकता आविष्कार की जननी है, के अनुसार मुद्रण यन्त्र एवं बंगला टायप का आविष्कार हुआ। बंगला टायप का प्रथम व्यवहार हालहैड साहब द्वारा रचित बंगला व्याकरण में हुआ। पुस्तक अंग्रेजी में लिखी गयी थी और 1778 ई. में हुगली से प्रकाशित हुई। यह कहा जा सकता है कि मुद्रण यन्त्र के लिए बंगला अक्षरों की सृष्टि होने से ही बंगला साहित्य में नूतन युग का आविर्भाव हुआ। मुद्रण यंत्र की सहायता से पुस्तक प्रकाशन अनायास ही साध्य व्यापार हो गया। उसी समय में साहित्य संकीर्ण मर्यादाओं से बाहर आकर सबके लिए सब समय के लिए उपयोग की सामग्री बन गया। बंगला गद्य की प्रतिष्ठा हो जाने के उपरान्त 19 वीं शताब्दी के प्रथम भाग में पहले के ही अनुसार वैष्णव पद, रामायण, महाभारत, मनसा मंगल इत्यादि धर्म काव्य काफी संख्या में लिखे गये। श्रीमद्भागवत् एवं अन्यान्य पुराणों के अनेक अनुवाद भी हुए। विक्रमादित्य का उपाख्यान एवं विद्यासुन्दर के अनुकरण पर रचित प्रणय–कहानी वाले ग्रन्थ शहरों में जनप्रिय थे। यद्यपि उनका साहित्यिक मूल्य नहीं के बराबर है तथापि वे लोकप्रिय रहे। उत्तर एवं पूर्व बंगाल में ऐतिहासिक एवं अनैतिहासिक कहानियों के आधार पर रचित ग्राम–गीत बीसवीं शताब्दी में भी प्रचलित रहे। इस प्रकार 18 वीं शताब्दी के अन्त तक बंगला गद्य के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि का निर्माण हो गया।

2. **बंगला गद्य का आदियुग : फोर्ट कॉलेज की पाठ्य - पुस्तक** – 18 वीं शताब्दी के बिल्कुल अन्त में बंगला में दो – तीन कानून की पुस्तकें लिखी गयीं। वे अरबी – फारसी के शब्दों से पूर्ण थीं और इसी के साथ विलायत से आने वाले कर्मचारियों को बंगला सिखाने की आवश्यकता की पूर्ति हेतु पाठ्य– पुस्तकें तैयार की जाने लगीं। इन साहबों का प्रयोजन बोलचाल की व्यवहारोपयोगी भाषा सीखना था। इस कार्य में केरी नामक अंग्रेज विद्वान ने विशेष प्रयत्न किया और फोर्ट विलियम कॉलेज का विशेष योगदान रहा। जिस वर्ष कॉलेज की स्थापना हुई, उसी वर्ष केरी साहब का व्याकरण और कथोपकथन, रामराम वसु का प्रतापादित्य चरित्र एवं गोलोक शर्मा का हितोपदेश प्रकाशित हुआ। रामराम वसु रचित राजा प्रतापादित्य चरित्र ही बंगला अक्षरों में मुद्रित प्रथम मौलिक बंगला गद्य की पुस्तक है। इसके पहले प्रकाशित गद्य

ग्रन्थ या तो अंग्रेजी से अनुवादित थे अथवा रोमन लिपि में थे। रामराम वसु का दूसरा गद्य ग्रन्थ 'लिपिमाला' अगले वर्ष 1801 ई. में प्रकाशित हुआ। 1905 ई. में चण्डीचरण मुंशी का 'तोता इतिहास', राजीवलोचन मुखोपाध्याय का 'महाराज कृष्णचन्द्र रामस्य चरित्रम्' और मृत्युंजय विद्यालंकर का 'बंत्रिश सिंहासन' प्रकाशित हुआ।

फोर्ड विलियम कॉलेज के शिक्षकों में श्रेष्ठ गद्य लेखक मृत्युंजय विद्यालंकार थे। यह संस्कृत में विशेष निपुण थे। वह एक प्रकार से केरी साहब के दाहिना हाथ थे। मृत्युंजय ने बंगला में कई गद्य-ग्रन्थों की रचना की जिनमें 'राजा बलि' और 'प्रबोध चन्द्रिका' श्रेष्ठ हैं। इनकी पुस्तक 'राजा बलि' देशी लोगों का लिखा प्रथम भारतवर्ष का इतिहास है। केरी, मार्शमैक एवं अन्यान्य यूरोपीय शिक्षा प्रचाकगण स्वयं लिखकर अथवा पंडितों द्वारा लिखाकर प्रचुर परिमाण में बंगला पाठ्य - पुस्तकें प्रकाशित करने लगे। इस कार्य में कई प्रतिष्ठित स्थानीय लोगों ने भी भरपूर सहयोग प्रदान किया। इनमें प्रमुख एवं अग्रगण्य थे राजा राममोहन राय, राजा राधाकान्त देव और राजा कालीकृष्ण देव बहादुर। राजा राममोहन राय ने पंडितों के साथ वितर्क में जुटवर वेदान्त दर्शन एवं शास्त्र विचार विषय पर कई उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने एक बंगला व्याकर भी लिखा। राधाकान्त ने नाना प्रकार से बंगला में शिक्षा, बंगला भाषा के विस्तार और बंगला साहित्य की पोषकता के विषय में असामान्य सहायता की। विराट् संस्कृत कोष 'शब्द - कल्पद्रमु' महाराज की अक्षय कीर्ति के रूप में बहुत समय तक विराजता रहेगा।

इस युग में रचित अधिकांश ग्रन्थ संस्कृत, फारसी या अंग्रेजी के अनुवाद हैं। मौलिक गद्य ग्रन्थ बहुत थोड़े हैं - केवल मृत्युंजय के गद्य मौलिक रचनाएँ हैं औ उन्हीं का गद्य किसी सीमा तक ठिकाने का है। अन्यथा इस समय का बंगला गद्य का रूप अपरिमार्जित है। इन ग्रन्थों में बंगला गद्य-शैली के शैशव रूप के दर्शन होते हैं।

3. सामायिक पत्रों का आविर्भाव :-

फोर्ट विलियम कॉलेज के विद्वानों ने पाठ्य - पुस्तकों की रचना करके बंगला गद्य का प्रवर्तन अवश्य किया और गद्य को अध्ययन का माध्यम भी बना दिया, परन्तु भाषा की उन्नति अथवा परिपुष्टि का मार्ग वे प्रशस्त नहीं कर सके। वे इस सामग्री को जनता की वस्तु नहीं बना सके। यह कार्य पत्र - पत्रिकाओं द्वारा सम्पन्न किया गया। थोड़े से निर्दिष्ट व्यक्तियों के लिए लिखे हुए होने के कारण इन गद्य - ग्रन्थों का समाचार जनता तक नहीं पहुँच सका पर

क्रिक्रसस्तान पादरियों द्वारा एक ऐसी नूतन वस्तु का प्रवर्तन हुआ कि जिससे पढ़ने की क्षमता रखने वाले साधारण नूतन गद्य साहित्य से अधिक समय तक उदासीन अथवा वीतराग नहीं रह सके। मिस्टर केरी के उद्योग से श्रीरामपुर के मिशनरी सम्प्रदाय ने 1818 ई. में बंगला सामयिक पत्र का प्रवर्तन किया। अप्रैल के महीन में 'दिग्दर्शन' नामक मासिक – पत्र 'समाचार दर्पण' प्रकाशित हुआ। इसी के आसपास गंगा किशोर भट्टाचार्य ने 'बंगला गजट' प्रकाशित किया। इसी को प्रथम सामायिक पत्र माना जाना चाहिए। दृष्टव्य है कि यह स्थानीय बंगालियों के उदद्योग से प्रकाशित हुआ था।

इस प्रकार सामायिक पत्रों के माध्यम से बंगालियों ने बंगला गद्य का रसास्वादन किया। नई – नई खबरें और प्राचीन काव्य की गल्पें जनता को इन सामयिक पत्रों के माध्यम से मिलते लगीं। निदान इन पत्रों की माँग अप्रत्याशित रूप से बढ़ गयी। इस प्रकार इन पत्रों ने बंगला गद्य की उन्नति का द्वार खोल दिया। जिन अनेक सामयिक और संवाद पत्रों की सृष्टि हुई, उनमें 'समाचार चन्द्रिका' प्रमुखतम है। उसका प्रथम अंक 5 मार्च, 1822 ई. को प्रकाशित हुआ। समाचार चन्द्रिका के सम्पादक थे भवानीचरण वन्द्योपाध्याय। वह अपने समय के एक मान्य लेखक थे। उधर राजा राममोहन राय आदि ने भी इस क्षेत्र में कदम रखा था।

भवनीचरण वन्द्योपाध्याय की शैली व्यंग्यात्मक एवं हास्यपूर्ण थी। इस शैली में उन्होंने गद्य की कुछ पुस्तकें लिखीं। बंगला साहित्य की उत्कृष्ट व्यंग्य रचनाओं में भवानीचरण विरचित 'नव बाबू विलास' एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है। भावानीचरण से प्रभावित होकर जिन लोगों ने व्यंगग्यपूर्ण गद्य रचनाएँ लिखीं, उनमें मुख्य नाम हैं – हेकचाँद ठाकुर, दीनबन्धु मिश्र आदि परवर्ती लेखक।

उसी युग में ईश्वरचन्द्र गुप्त सर्वश्रेष्ठ सामयिक पत्र सेवी साहित्यकार के रूप में उभकर आये। सन् 1831 में इन्होंने 'संवाद प्रभाकर' नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया । सन् 1859 ई. के आसपास इनका परलोकवास हुआ। 'संवाद प्रभाकर' तब तक चलता रहा। संवाद प्रभाकर के माध्यम से आपने अनेक नवयुवक लेखकों को प्रोत्साहित किया। परवर्ती काल के अनेक कवियों और ग्रन्थकारों ने 'संवाद प्रभाकर' के पृष्ठों से ही साहित्य – सृष्टि के कार्य की शिक्षा प्राप्त की थी। इस प्रकार बंगला के पत्रकार साहित्य में ईश्वरचन्द्र का महत्वपूर्ण स्थान है। अनेक साहित्यकारों ने गर्वपूर्ण ढंग से आपको अपना शिक्षा गुरु स्वीकार किया है। ईश्वरचन्द्र की शैली, जैसी कि संवाद – पत्र– सेवियों की हुआ करती है, व्यंग्य और हास्य –

प्रधान, हल्की एवं समय – समय पर ग्राम्यता को स्पर्श करती हुई थी। यही कारण था कि एक पत्रकार के रूप में वह काफी सफल हुए, यद्यपि स्थायी साहित्य की दृष्टि से उनके द्वारा रचित पद्य का मूल्य बहुत कम है। उन्होंने अपनी गद्य एवं पद्य रचनाओं के माध्यम से स्वदेश और स्वसमाज की प्रीति का प्रवर्तन किया।

4. बंगला गद्य साहित्य की प्रतिष्ठा :-

फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापकों ने पाठ्य – पुस्तकों के माध्यम से जिस गद्य शैली का प्रवर्तन किया, सामान्य रूप से वही आगामी समय में पाठ्य – पुस्तक – रचयिताओं के लेखों में 19 वीं शताब्दी के मध्य भाग तक चलती रही। यह शैली अंग्रेजी से अनभिज्ञ पाठकों के लिए बिल्कुल अबोध बन गयी थी, क्योंकि एक तो उसमें संस्कृत के शब्दों की भरमार रहती थी और दूसरे अंग्रेजी का अनुवाद करने के कारण वे लोग अपनी वाक्य–रचना में हू – ब – हू अंग्रेजी शैली का अनुकरण करते थे।

सामयिक पत्र – पत्रिकाओं द्वारा साधारण लोगों की समझ में आने वाले गद्य का चालन तो हो गया था, परन्तु यह शैली भी दोषपूर्ण थी। बंगला भाषा के शब्दों के साथ संस्कृत के शब्दों का प्रयोग मनमाने ढंग से किया जाता था और वाक्य प्राय: अत्यधिक लम्बे हुआ करते थे, जिससे वाक्य की समाप्ति तक पाठक प्राय: आरम्भ में कही हुई बात या बातों को भूल जाया करते थे। विराम – चिह्नों का भी प्रयोग व्यवस्थित ढंग से नहीं होता था। फलत: बंगला गद्य में उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना के सामने प्रश्न – चिह्न लग गया था।

जिस प्रकार हिन्दी गद्य को अनेक पत्रों से युक्त करके भारतेन्दु ने उच्च साहित्य का वाहन बनाया, उसी प्रकार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बंगला गद्य को उक्त समस्त दोषों से मुक्त करके श्रेष्ठ साहित्य का माध्यम बना दिया। शिक्षा समाप्त करके ईश्वरचन्द्र नौकरी के लिए फोर्ट विलियम कॉलेज में प्रविष्ट हुए और बंगला गद्य में पाठ्य– पुस्तकें लिखना आरम्भ किया। इनका प्रथम गद्य – ग्रन्थ 'वासुदेव चरित्र' प्रकाशित नहीं हो सका, क्योंकि वह कॉलेज के अधिकारियों के मनोनुकूल नहीं था। इनके द्वारा लिखा हुआ द्वितीय ग्रन्थ 'वेतालपंचविंशति' सन् 1847 ई. में प्रकाशित हुआ और उसी के साथ बंगला गद्य में नूतन युग का प्रवर्तन हुआ। गद्य के उसी रूप को आजकल प्रयोग में लाया जाता है। तदुपरान्त इन्होंने अनेक पाठ्य –पुस्तकों की रचना की, यथा – बंगाल का इतिहास (1848 ई.), जीवन चरित्र (1849 ई.), शिशु शिक्षा

चतुर्थ भाग अथवा वोधोदय (1851 ई.), शकुन्तला (1854 ई.) कलामाला (1856 ई.) चरित्रवली (1856 ई.), महाभारत का उपक्रमणिका पर्व (1860 ई.) सीता का वनवास (1860 ई.), आख्यान मंजरी (1863-68 ई.) शान्ति - विलास (1869 ई.) इत्यादि। ये पुस्तकें प्राय: संस्कृत या अंग्रेजी के ग्रन्थों के आधार पर लिखी गयी थीं, तथापि इनकी विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण सर्वथा मौलिक था तथा भाषा परिमार्जित एवं परिष्कृत थी। अनुवाद के लिए जिस वस्तु का बोध होता है, वह नहीं थी।

विद्यासागर ने केवल पाठ्य-पुस्तकें ही नहीं, अन्य अनेक पुस्तकें भी लिखीं। उन्होंने कई संस्कृत ग्रन्थों के शुद्ध संस्करण भी प्रकाशित किये। विद्यासागर के पहले बंगला गद्य में या तो शुद्ध संस्कृत अथवा चलित भाषा के शब्दों का अनुचित बाहुल्य रहता था अथवा दोनों का शोभाशून्य समप्रयोग। विद्यासागर ने इन दोनों प्रकार के शब्दों के प्रयोग में ऐसा सामंजस्य स्थापित किया कि उससे भाषा की ओजस्विता भी नष्ट नहीं हुई और रचना का लालित्य भी इसमें आ गया। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि बंगला गद्य के प्रवर्तन में यही विद्यासागर का कृतित्व है, इसी के अभाव में सन् 1847 ई. के पूर्व का बंगला - गद्य साहित्य अथवा साधारण कामकाज की भाषा होने की योग्यता प्राप्त नहीं कर सका था।

विद्यासागर ने ही सबसे पहले बंगला गद्य की स्वाभाविक ताल को लक्ष्य किया एवं उसके अनुसार काव्य-रचना करके सुललित गद्य - शैली का प्रवर्तन कि है। **डॉ. सुकुमार सेन** के शब्दों में, ''बंगला साधुभाषा के गद्य के पिता विद्यासागर हैं - इस बात में तनिक भी अत्युक्ति नहीं। बंगला गद्य के विकृत कंकाल में मेध - माँस, रक्त संयोजन और प्राण - संचारण करके विद्यासागर ने ही इसको साधारण व्यवहार के योग्य जीवित भाषा के रूप में खड़ा कर दिया।''

(पृ. 126, 127 बंगला साहित्य की कथा, डॉ. सुकुमार सेन)

बंगला -गद्य के प्रवर्तन में विद्यासागर के प्रधान सहयोगी थे अक्षय कुमार दत्त। वह कई विषयों के विद्वान थे। सन् 1843 में ब्रह्म समाज द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'तत्वबोधिनी' के वह प्रथम सम्पादक नियुक्त हुए। इस पत्रिका का सम्पादन उन्होंने 12 वर्षों तक किया। इस पत्रिका में उनके विविध प्रबन्ध प्रकाशित हुआ करते थे, इन्हीं प्रबन्धों का संकलन करके वह पाठ् - पुस्तके प्रकाशित किया करते थे। उनकी गद्य - शैली वैज्ञानिक विषयों के विशेष अनुकूल थी।

विद्यासागर के पथ का अवलम्बन करके 19 वीं शताब्दी के मध्य भाग में जिन्होंने बंगला गद्य की प्रतिष्ठा में विशेष योग दिया उनमें ये नाम उल्लेखनीय हैं – राजनारायण वसु, राजा राजेन्द्रनाथ मित्र, ताराशंकर तर्करत्न, रामगति न्यायरत्न, राजकृष्ण वन्द्योपाध्याय, कालीप्रसन्न सिंह, भूदेव मुखोपाध्याय, महिर्ष देवेन्द्रनाथ ठाकुर एवं कृष्णकमल भट्टाचार्य। राजेन्द्रलाल मित्र ने कई पाठय-पुस्तकों की रचना के अलावा दो मासिक पत्रों का सम्पगदन भी किया। वे पत्रिकाएँ अत्यन्त सम्मानीय एवं लोकप्रिय रहीं। इनके बड़े भाई गोपाललाल मित्र ने बी बंगला गद्य में दो अच्छी पुस्तकें लिखी थीं – (1) ज्ञान चन्द्रिका और (2) भारतवर्ष का इतिहास। सन् 1851 ई. विविधार्थ संग्रह पत्रिका प्रकाशित हुई। इसमें राजेन्द्रलाल करते थे। यह कार्य वह सन् 1859 ई. तक करते रहे, जबकि उक्त पत्र का प्रकाशन ही बन्द हो गया। इसके 6 वर्ष बाद राजेन्द्रलाल ने रहस्य सन्दर्भ नामक पत्रिका का सम्पादन किया। ताराशंकर तर्करत्न एवं रामगति न्यायरत्न ने भी सम्पादन के साथ पाठ्य-पुस्तकों के लेखन का कार्य किया।

संस्कृत कॉलेज के एक अन्य सुविख्यात छात्र द्वारकानाथ विद्याभूषण उस समय के एक शक्तिशाली गद्य लेखक थे। इनके द्वारा सम्पादित 'सोमप्रकाश' ने उन दिनों विशेष आदर प्राप्त किया था। कहने का तात्पर्य यह है कि पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों ने बंगला गद्य का प्रवर्तन किया और बंगला के पत्र – पत्रिकाओं ने उसको प्रतिष्ठित किया। इस कार्य में मुख्य योगदान देने वाले महानुभाव हैं, मिस्टर केरे, ईश्वरचन्द्र सेन, तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर।

तदुपरान्त बंकिचन्द्र के हाथ में पड़कर बंगला भाषा सर्वथा सहज एवं व्यवहारोपयोगी बन गयी। दुर्गेशनन्दिनी पूर्णतया विद्यासागरी शैली पर लिखी गयी है। 'कपाल कुण्डला' और 'मृणालिनी' की भाषा भी सामान्यत: उसी शैली पर है। बंगदर्शन की स्थापना के समय से लेकर ही बंकिम ने बोलचाल की भाषा का ढंग मिलाकर और वाक्यों के विस्तार को घटाकर उनको छोटा करके भाषा को सरल और अधिक सहज बोध्य कर दिया। यह बंकिम की प्रधान देन है।

बीसवीं शताब्दी में बंगला गद्य को निखार प्रदान करने वालों में दो हस्ताक्षर अत्यन्त सशक्त हैं – शरवाल दास वन्द्योपाध्याय और शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय। रवीन्द्रनाथ की छाया में कई गल्प लेखकों ने बंगला गद्य के विकास में अच्छा योगदान किया अति आधुनिक काल में बंगला के अनेक लेखक शक्तिशाली रचनाएँ करके बंगला गद्य के विकास में अच्छा योगदान कर रहे हैं। बंगला – गद्य पूर्ण विकास के पथ पर अग्रसर है। उसका भविष्य सर्वथा सुरक्षित एवं उज्वल है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र.15. बंगला साहित्य और हिन्दी साहित्य के आरम्भ काल का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

1. बंगला साहित्य का आदिकाल :-

सन् 12 वीं शताब्दी के अन्तिम दशा में बंगला के लक्ष्मण देव का साथ आता है। उस समय बंगला साहित्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन होता था। लक्ष्मण देव के दरबार में उमापतिघर, शरण, छीपी, गोवर्धनाचार्य एवं जय देव कवि रहते थे। गीत – गोविन्द के रचनाकार जय देव उस समय के प्रसिद्ध कवि माने जाते थे। गीत – गोविन्द में रम पद हैं और इसकी भाषा संस्कृत है। बंगला साहित्य का सूत्रपात इन्हीं पदों से होता है। उसकी भाषा अत्यन्त मधुर एवं कोमल कान्त पदावली युक्त होने के कारण शिक्षित एवं अशिक्षित लोग सभी के यह ग्रन्थ प्रिय है। समस्त परवर्ती वैष्णव कवि जयदेव के ऋणी है। मैथिल कोकिल विद्यापति अभिनव जयदेव कहलाते हैं। सेन राजाओं के समय अपभ्रंश भाषा की भी कुछ–कुछ चर्चा होती थी।

बौद्ध सिद्धाचार्य बंगला में पद लिखते थे। उनके पूर्व बंगला भाषा में अन्य किसी की रचना नहीं हुई। 10 वीं – 11 वीं शताब्दी में बंगला भाषा अपभ्रंश से पृथक होकर स्वतन्त्र भाषा के रूप में प्रचलित होती थी। 12 वीं शताब्दी में जयदेव के बंगला साहित्य के आदिकाल का समापन होता है।

10 वीं और 12 वीं शताब्दी के बीच चर्चा गीतों की रचना मानी जाती है। यह समय हिन्दू–बौद्ध काल माना जाता है। चर्चा गीतों में हिन्दू–बौद्ध संप्रदायों का समवेश हुआ है। इसकी कला और इसका शिल्प भी उक्त सिद्धान्तों की पुष्टि करते हैं। इसमें संश्लिष्ट संस्कृति एवं तत्कालीन साहित्य प्रतिफलित होता है।

डॉ. टी.सी.सेन के अनुसार 8 वीं – 12 वीं शताब्दियों के बीच उपलब्ध साहित्य के विशेष प्रकार उल्लेख निम्न प्रकार है –

1. उपासना विषयक कृतियाँ – दो।
2. शून्य – पुराण धर्म – पूजा विधाना ये ग्रन्थ गूढ़ बौद्ध धर्म सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं।
3. कुछ पुरानी कहाकतें। जनश्रृति के अनुसार इनके रचना कार रचना और डाल थे।
4. कुछ पद्यबद्ध कथाएं जो प्राचीन लोक – साहित्य के अंग हैं।

5. नाथ साहित्य – अनेक विद्वान इस श्रेणी के साहित्य को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और वे चर्चा गीतों को आदिकालीन बंगला साहित्य की सम्मति मानते को तैयार नहीं है।

गीत – गोविन्द संस्कृत रचना होने पर भी बंगला में अत्यन्त लोकप्रिय हुई है। गीत–गोविन्द के छन्द अनुप्रास – लय, ताल आदि की प्रवृत्तियाँ प्रस्फुहित है। बंगला कविता – विकास में गीत – गोविन्द काव्य निरन्तर क्रियाशील रहा है। गीत–गोविन्द एक श्रेष्ठ गीति काव्य है। यह काव्य बंगला गीति – नाट्य का पूर्व रूप समझाजा सकता है।

15 वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में पश्चिम बंगाल में साधारण एवं सामान्य रुचिका सर्वोत्तम चित्रण वृन्दावन दास के चैतन्य भागवत ग्रन्थ में प्राप्त होता है। उन दिनों कृष्ण की बाललीलाएँ एवं शिव की गृहस्थी के गीत बहुत लोकप्रिय हुए थे। उन्हें गा – गाकर भिखारी भीख माँगा करते थे। रामायण गान एवं ऐतिहासिक गाथाओं को साधारण जन – हिन्दू और मुसलमान रुचिपूर्वक गाते थे। 15 वीं सदी में रचित अनेक ग्रन्थों की चर्चा मिलती है। परन्त उपलब्ध ग्रन्थ बहुत कम हैं।

15 वीं शताब्दी के मध्य भाग तक बंगला साहित्य का आरम्भ काल (आदि काल) माना जा सकता है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल (आरम्भ काल) :- (1050 - 1375)

हिन्दी साहित्य के आदिकाल को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'वीरगाथा काल' कहा है। इस समय तक आते – आते हिन्दी प्राकृत व अपभ्रंश की रूढ़ियों से मुक्त हो चुकी थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ''प्राकृत पढ़े हुए पण्डितों के अलावा जनसाधारण भी कविता करते होंगे।'' देशभाषा में भी सुन्दर कविताएँ लिखी जाती होंगी। राजसभाओं में सुनाये जानेवाले नीति, श्रृंगार आदि विषयप्राय: दोहों में कहे जाते थे और वीर रस के पद्य छाप्पय में। राजाश्रित कवि अपने राजाओं के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का वर्णन अनूठी उक्तियों के साथ किया करते थे और अपनी वीरोल्लास भर कविताओं में वीरों को उत्साहित करते थे। इन राजाश्रित कवियों की रचनाओं को सुरक्षित रखने के उपाय सुलभ थे। ये राजकीय पुस्तकालयों में सुरक्षित रहती थीं और भट्ट – चारण जीविका के विचार से उन्हें अफने उत्तराधिकारियों के पास छोड जाते थे। उत्तरोत्तर भट्ट–चारणों की परम्परा में चलते रहने के कारण उनमें बहुत कुछ परिवर्तन भी होते रहे। यही रक्षित परम्परा की सामग्री हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल में मिलती है। इसी से यह काल वीरगाथा काल कहा जाता है।

उन दिनों उत्तर – पश्चिय से लगातार मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे। उत्तर – पश्चिम भारत के निवासी उन घक्कों को सहते थे। यही भाग भारतीय सभ्यता और बल – वैभव का केन्द्र था। कन्नौज, दिल्ली, अजमेर, अन्हलवाडा आदि बडी – बडी राजधानियाँ उधर ही प्रतिष्ठित थीं। उधर की शिष्ट भाषा मानी जाती थी। कवि – चरण उसी भाषा में रचनाएँ करते थे। प्रारम्भिक काल का जोभी साहित्य हमें उपलब्ध होता है, उसका आविर्भाव उसी भू – भाग में हुआ। हर्षवर्धन के उपरान्त देश के खण्ड–खण्ड हो गये थे और गहरवार, चौहान, चंदेल, परिहार आदि राजपूत राज्य पश्चिम की ओर प्रतिष्ठित थे। वे अफने शौर्य – प्रदर्शन एवं अपने प्रभाव की वृद्धि के लिए लडाई मोल लेते रहते थे। कभी – कभी किसी राजा की सुन्दर कन्या (राजकुमारी) को प्राप्त करने के लिए राजा एक – दूसरे पर चढ़ाई कर देते थे। जिस समय से हमारे हिन्दी साहित्य का अभ्युदय होता है, वह लडाई– भिडाई का समय था, वीरता के गौरव का समय था और सब बात पीछे पड गयी थी ।

इस काल के काव्यों में वीर रस प्रधान रहता था तथा श्रृंगार रस गौण एवं सहायक रूप में रहता था। उन काव्यों के सन्दर्भ में एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि उन काव्यों में प्रथानुकूल कल्पित घटनाओं की बहुत अधिक योजना रहती थी।

वे वीर गाथाएँ दो रूपों में मिलती थीं– (1.)प्रबन्ध काव्य के साहित्यिक रूप में और (2.) वीर गीतों के रूप में। साहित्यिक प्रबन्ध काव्य के रूप में सब से प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है। 'पृथ्वीराज रासो' है। वीर गीतों में 'बीसलदेव रासो' सब से प्राचीन पुस्तक है।

वीरगाथा काल में साहित्यिक ग्रन्थ रासो कहलाते थे। रासो शब्द के विभिन्न अर्थ किये जाते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार रसायन शब्द होते–होते रासो हो गया है।

आरम्भकाल के कुछ महत्त्वपूर्ण काव्य :-

1. **खुमान रासो :-**

इसका रचनाकाल संवत 810 – 1000 के बीच माना जाता है। इसके रचनाकर अनुमानत: दलपति विजय हैं।

2. **बीसलदेव रासो :-**

यह 100 पृष्टों का वीरगीत काव्य है। इसके रचयिता नरपति नाल्ह हैं।

3. पृथ्वीराज रासो :-

इस काव्य के रचनाकार चन्दबरदाई है। हिन्दी साहित्य का यह प्रथम महाकाव्य माना जाता है। यह एक बृहद्महाकाव्य है। इस में दिल्ली के शासक पृथ्वीराज चौहान का सम्पूर्ण जीवन वर्णित है। यह लगभग 2000 पृष्ठों का काव्य है। उस समय प्रचलित प्राय: समस्त छन्दों का प्रयोग इस काव्य में किया गया है। इसकी भाषा अवहट्ठ मिश्रित आधुनिक हिन्दी है।

'जगनिक' इस काल का एक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इन्होंने आलह खण्ड नामक प्रसिद्ध गीतात्मक काव्य की रचना की। भट्ट केदार, मधुकर कवि और श्रीधर इस काल के तीन प्रसिद्ध कवि हैं। भट्ट केदार ने 'जयचन्द प्रकाश' काव्य में महाराज जयचन्द के प्रताप एवं पराक्रम का विस्तृत वर्णन किया है। मधुकर ने 'जयमयंक जसचन्दि का' नामक काव्य की रचना की। श्रीधर कवि ने 'रणमल्ल छन्द' नामक काव्य की रचना की।

वीरगाथाकाल के अन्तर्गत फुट कल रचनाकारों के अन्तर्गत खुसरो और विद्यापति के नाम लिये जाते हैं।

खुसरो :-

खुसरो ने संवत 1340 के आसपास अपनी रचना आरम्भ की। इन्होंने जनता की भाषा में दोहे, तुकबन्दियाँ और पहेलियाँ लिखीं। इन्होंने कुछ रसीले गीत और दोहे व्रजभाषा में लिखे।

विद्यापति :-

विद्यापति ने अपभ्रंश में 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्तिपताका' काव्यों की रचना की और मैथिली भाषा में पदावली की रचना की। वे 'मैथिल - कोकिल' नाम से विख्यात हैं। उन के पद प्राय: श्रृंगार परक है। जिन में नायिका और नायक राधा और कृष्ण हैं। इन पदों की रचना प्राय: जयदेव के संस्कृत पदों के अनुकरण परही की गथी है। विद्यापति शैव होने के कारण उन्होंने शिव सम्बन्धी भक्ति परक पदभी लिखे हैं। किन्तु वैष्णव कृष्ण भक्ति की परम्परा में ही उनकी गणना है।

निष्कर्ष :-

हिन्दी के प्रारम्भ काल से अन्तिम चरण तक वीरगाथाकाल की सामान्य प्रवृत्ति वीरकाव्य रचना एक दम परिवर्तित हुई दिखाई देती है। काव्य की दो नवीन प्रवृत्तियाँ - मनोरंजन साहित्य

एवं राधाकृष्ण का श्रृंगार वर्णन देखने को मिलती हैं। इस वर्णन में रीति निरूपण के बीज प्राप्त होते हैं।

हिन्दी अपभ्रंश एवं अवहट्ठ के प्रभाव से पूर्णत: मुक्त हो जाती है। खडीबोली कविता के प्रथम दर्शन खसरो की पहेलियों और मुकरियों में होते हैं। साथ ही बोलचाल की ब्रज भाषा में कविता के उदाहरण मिलते हैं। बंगला भाषा भी प्रचलित रूढ़ियों से मुक्त हो कर आधुनिक रूप में आजाती है। काव्य–रचना की दृष्टि से यह परम्पराओं में ही बाँधी – रहती है। चर्चा गीतों की परम्परा वह मुक्त होने का प्रयास करती हुई दिखाई देती हैं। हिन्दी की अपेक्षा बंगला साहित्य कम समृद्ध है। हिन्दी में समृद्धि एवं विविधता दोनों के दर्शन होते हैं। साथ ही युगीन चेतना के दर्शन भी होते हैं। इसका मुख्य कारण दोनों भाषाओं के प्रदेशों की राजनीतिक परिस्थितियों की।

Lesson Writer

ऐनम्पूडि कविता एम.ए.

प्र.16. बंगला साहित्य एवं हिन्दी साहित्य के पूर्व - मध्यकाल का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. बंगला साहित्य का पूर्व–मध्यकाल
   (क) वैष्णव साहित्य
   (ख) मंगल काव्य
3. हिन्दी साहित्य का पूर्व – मध्यकाल
   (क) ज्ञानीश्रयी शाखा
   (ख) प्रेममार्गी शाखा
   (ग) रामभक्ति शाखा
   (घ) कृष्ण भक्ति शाखा
4. निष्कर्ष

1. प्रस्तावना :-

बंगला साहित्य और हिन्दी साहित्य दोनों 14 वीं शताब्दी से नवीन परिवेश में प्रवेश करते हैं। 14वीं शताब्दी से 19 वीं शताब्दी के मध्यकाल तक दोनों भाषाओं के साहित्य का मध्यकाल रहता है। अध्ययन की सुविधा एवं प्रवृत्तियों के आधार पर यह काल पुन: दो भागों में विभक्त किया गया है – (1) पूर्व–मध्यकाल और (2) उत्तर – मध्यकाल

2. बंगला साहित्य का पूर्व - मध्यकाल :-

14 वीं शताब्दी के मध्यकाल से 16 वीं शताब्दी के अन्त तक यह काल चलता है। 12 वीं शताब्दी के अन्त तक बंगाल मुसलमानों के शासन में था। यह बंगाल के सामाजिक एवं बौद्धिक जीवन के लिए विषय आघात था। इस आघात ने समाज के ऊपरी स्तर को प्रभावित किया। फलत: संस्कृत की परम्परा और संस्कृति ने अपनी पुरानी गरिमा और प्रभाव खो दिये। तब समाज के निम्न वर्ग को सक्रिय तथा गतिमान होने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रादेशिक संस्कृति

एवं परम्परा के नये विषय तथा साहित्य के नये रूप उभर कर सतह पर आ गये। साहित्य में नये प्राणों का संचार हुआ। उससे बंगला भाषा के साहित्यक विकास में पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई।

(क) वैष्णव साहित्य :-

बंगला साहित्य का आदिकाल 12 वीं शताब्दी के अंततक माना जाता है। तत्पश्चात 100 वर्ष तक कोई उदीयमान साहित्य का सृजन न हुआ। अत: बंगला साहित्य का मध्य भाग 14 वीं शताब्दी के मध्य भाग से माना जाता है। बंगला साहित्य के मध्यकाल के पूर्व- मध्यकाल के आरम्भ में राधाकृष्ण विषयक श्रृंगारी गीत प्राप्त होते हैं और जयदेव कृत 'गीत - गोविन्द' इस विषय की प्रथम श्रेष्ठ रचना है। 'गीत - गोविन्द' संस्कृत की रचना है।

परम वैष्णव चण्डीदास वैष्णव साहित्य के श्रेष्ठ कवि हैं। उनके उत्तरवर्ती कवियों ने उनके माधुर्य प्रसादत्व का मुक्त कण्ठ से स्तवन किया है। महाप्रभु चैतन्य देव भी चण्डी दास के काव्य के अनुरागी हैं। वैसे चण्डीदास का काव्य 'श्रीकृष्ण कीर्तन' देशीय प्रबन्ध जैसा ग्रन्थ है। इसका आरम्भ कृष्ण - जन्म से लेकर अन्त तक कृष्ण के वियोग के उपरान्त राधा के करुण विलाप से होता है। यह ग्रन्थ मूलत: कीर्तनपरक गीतों का ही संकल है। इस में नाटकीय तत्व सहजभाव से विद्यमा दिखाई देते हैं। गद्य-पद्य संवादों का निर्वाह कौशल पूर्ण हुआ है।

अनेक वैष्णव मुक्तक प्रेमगीत चण्डीदास के नाम से प्रचलित हैं। मौखिक परम्परा में प्रचलित होने के कारण उनके मूल पाठ में अन्तर हो जाना स्वाभाविक है। इन गीतों में मर्मस्पर्शिता, विशदता, प्रसादत्व, स्वाभाविकता आदि गुण पाये जाते हैं।

चण्डीदास के साथ मैथिल-कोकिल विद्यापति का नाम भी जुडा हुआ है। विद्यापति के पद राधा-कृष्ण के श्रृंगार वर्णन से भरे हुए हैं। चैतन्य देव चण्डीदास और विद्यापति के गीतों से अभिभूत थे। बंगाल में ऐसी अनेक कविताऐं प्रचलित हैं जिन्हें विद्यापति द्वारा रचित माने जाते हैं।

15 वीं शताब्दी में बंगाल में बंगला के 'कृष्णवास ओझा' नामक महत्त्वपूर्ण कवि हुए हैं। वे बंगला रामायण साहित्य के सर्वप्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। तुलसी दास कृत रामचरितमानस की मान्यता जो उत्तर हिन्दूस्थान में है, वही मान्यता कृत्तिवास रामायण की बंगाल में प्रचलित है। इसी काल में बंगला में मालाधुर बसु नामक एक अन्य कवि हुए हैं। उन्होंने बंगाल के एक मुसलमान अधिपति रुकनुद्दीन बहबक शाह के आश्रय में अपनी काव्य - कृति 'श्रीकृष्ण विजय' अथवा 'गोविन्द विजय' की रचना की। कविमालाधर बसु की जन्मभूमि वैष्णव

संस्कृति का केन्द्र बिन्दु थी। उन्होंने भागवत पुराण को बंगला के माध्यम से सर्वसुलभ शैली में रचा। कवि बसु को चैतन्य के भक्तिमार्ग के अग्रदूत के रूप में माना जाता है। उन्होंने बंगाल के धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक जीवन में नवस्फूर्तिका संचार किया।

(ख) मंगल काव्य :-

तान्त्रिक बौद्धों की देवियों तथा हिन्दुओं के देवी - देवताओं के मिलन से एक नये प्रकार के काव्य का उदय हुआ जिसे 'मंगल काव्य' कहा जाता है। इस साहित्य में हिन्दुओं के मध्य बौद्धों की देवियों की बढ़ती हुई मान्यता के इतिहास का गहरा प्रभाव है। मंगल काव्य में लम्बी वर्णनात्मक कविताएँ हैं, जिन में देवी-देवताओं द्वारा अपने प्रतिद्वनियों से संघर्ष कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की भावना रहती है। मंगल काव्यों में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं भौगोलिक तथ्य पाये जाते हैं। इनका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। इन काव्यों के तीन भेद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है -

(1) मनसा - मंगला - नारायण देव, केतकादास और क्षेमानन्द इस काव्य के प्रमुख कवि हैं।

(2) चण्डी - मंगल (केन्द्र महामाता, चण्डी0

(3) धर्म - मंगल (दक्षिण पश्चिम बंगाल के एक स्थानीय देवता धर्म ठाकुर)।

इन तीनों में मनसा - मंगल काव्य सब से प्राचीन है।

15 वीं शताब्दी में असम और उडीसा में भी ब्रजबुली में पदावली की रचनाएँ हुई थीं। 15 वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में बंगाल के समान असम में भी ब्रज बुली में कृष्ण - लीला विषयक रचनाएँ लिखने की प्रथा थी। उस समय असमिया भाषा का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था। असम में वैष्णव धर्म का प्रचार करनेवाले चैतन्य श्री शंकर देव थे। बंगाल से ही ब्रज बुली की पद - रचना की धारा उडीसा में प्रचलित हुई।

रामानन्द राय उडीसा में प्राचीन तक पदों के रचयिता हैं। वे चैतन्य देव के अन्यतम भक्त हैं। इनके द्वारा रचित पद 'पहिलहि राग कथन भंग मेल', रामानन्द द्वारा रचित 'चैतन्य चरितामृत' श्रेष्ठ काव्य हैं। रामानन्द राय ने संस्कृत मैं 'जगन्नाथ वल्लभ' नाटक की रचना की। 15 वीं शताब्दी का अन्त और 16 वीं शताब्दी का आरम्भ हुसैन शाही के साथ होता है। यहाँ से वस्तुत: बंगला साहित्य के उत्तर - मध्यकाल का आरम्भ होता है।

3. हिन्दी साहित्य का पूर्व - मध्यकाल (भक्ति काल) :-

देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने के पश्चात जनता के आत्मगौरव, गर्व और उत्साह का हास होने लगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में ''अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान लेजाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था!''

सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि जिस समय मुसलमान भारत में आये उस समय से सच्चे धर्मभाव का हास होने लगा। वैष्णव आचार्यों ने भारत संस्कृति का पुररुत्थान किया।

भक्ति का जागरण दक्षिण भारत के आचार्यों – रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, विष्णुस्वामी आदि के सहारे क्रमश- उत्तर भारत की ओर उपयुक्त भावभूमि पाकर समूचे उत्तर भारत में व्याप्त हुआ। रामानुजाचार्य ने शास्त्रीय विधान में जिस सगुण भक्ति का निरूपण किया था उसकी ओर आकर्षित होने लगी।

भक्ति की धाराएँ :-

भक्ति की दो धाराएँ चलती थीं –

(1) निर्गुण भक्ति और (2) सगुण भक्ति

निर्गुण भक्ति पुन: दो शाखाओं में विभक्त हुई – (क) ज्ञानाश्रयी शाखा और (ख) प्रेममार्गी शाखा। सगुण भक्ति भी दो शाखाओं में विभक्त हुई – (ग) रामभक्ति शाखा और (घ) कृष्ण भक्ति शाखा।

(क) ज्ञानाश्रयी शाखा :-

भारतीय ब्रह्मज्ञान तथा योग साधना को लेकर और उस में सूफियों के प्रेम-तत्त्व को मिला कर उपासना के क्षेत्र में यह शाखा अग्रसर हुई है। संत कबीर इस शाखा के प्रवर्तक माने जाते हैं। कबीर की वाणी रमैनी, सबद और साखी के रूप में प्रकट हुई जिसका संग्रह 'बीजक' है। उन्होंने तत्कालीन समाजिक बाह्य आडम्बर, अहंकार आदि का खण्डन किया। संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, प्रेम (भक्ति) की साधना, माया की प्रबलता, तीर्थाटन, व्रत, रोज, हज, नमा आदि के बारे में उन्होंने चर्चा की। वे हठयोग की साधना करते थे। उनकी भाषा

सधुक्कडी है। उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसा तथा प्रवृत्तिवादका मेल करके अपना पंथ (कबीर पंथ) खडा किया। उन्होंने निर्गुण राम की उपासना की –

वेद न जानूँ भेद न जानूँ, जानूँ एक हि रामा।

* * *

निरगुण राम निरगुण जपहुरे भाई।

हिन्दु तुरक न कोई

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। उनमें रैदास, धर्मदास, गुरुनानक, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास आदि प्रमुख कवि हैं। इस शाखा के कवियों में गुरुनानक का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने पंजाब में कबीर की निर्गुण उपासना का प्रचार किया और सिख वे जो भजन गाया करते थे, उनका संग्रह 'गुरुग्रन्थ साहब' में है। 'गुरु ग्रन्थ साहब' की भाषा 'गुरुमुखी' कहलाती है।

(ख) प्रेममार्गी शाखा :-

प्रेममार्गी सुफी कवियों की गाथाएँ साहित्य की कोटि में आती हैं। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम का आभास दिया है। इन प्रेम कथाओं का विषय सामान्यत: राजकुमार – राजकुमारी का प्रेम होता है। वे सब हिन्दुओं के घरों में आवश्यकतानुसार उन्होंने कुछ हेरफेर किया है। कहानियों का मार्मिक आधार हिन्दू है। मनुष्य के साथ पशु – पक्षियों और पेड – पौधों को भी सहानुभूति सूत्र में बद्ध दिखा कर एक अखण्ड जीवन समष्टि का आभास देना हिन्दू प्रेम कहानियों की विशेषता है। इन प्रेम कहानियों ने हिन्दू – मुसलमानों को एक – दूसर के निकट लाने में पर्याप्त योगदान किया।

प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि :-

कुतुबन – सन् 1500 में 'मृगावती' नामक काव्य की रचना की।

मंझन – 'मधुमालती' नामक प्रेम कहानी की रचना की।

उसमान – सन् 1613 ई. में इन्होंने 'चित्रावली' नामक पुस्तक की रचना की।

नूर मुहम्मद – इन्होंने सन् 1750 के आसपास इन्द्रावती नामक काव्य की रचना की।

मलिक मुहम्मद जायसी – मलिक मुहम्मद जायसी

प्रेममार्गी शाखा के सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं प्रतिष्टित कवि हैं। प्रसिद्ध सूफी फकीर रेखा मुहीउद्दीन के वे शिष्य थे और जायस के रहनेवाले थे। इनके लिखे हुए तीन ग्रन्थ मिलते हैं – पद्मावत, आखिरी कलाम और अखरावट। पद्मावत इनका सर्वश्रेष्ठ काव्य है। इस में चित्तौड के राजा रतन सेन और सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मावती (पद्मिनी) की प्रेम–कथा वर्णन है।

इस काव्य का पूर्व भाग कल्पित है और उत्तर भाग का आधार ऐतिहासिक है। इस काव्य की भाषा अवधी है और चौपाई – दोहा की शैली है।

पद्मावत काव्य का पूर्वार्द्ध एकान्त प्रेममार्ग का ही आभास देता है। उत्तरार्द्ध में लोकपक्ष का विधान है। पद्मिनी के रूप – सौन्दर्य का वर्णन लोकोत्तर रूप में हुआ है।

(ग) रामभक्ति शाखा :-

गोस्वामी तुलसीदास :-

गोस्वामी तुलसीदास रामभक्ति शाखा के प्रवर्तक हैं। वे राम के अनन्य भक्त हैं। शील, शक्ति एवं सौंदर्य के समन्वय के रूप में उन्होंने राम का वर्णन किया। राम को केन्द्रबिन्दु बनाकर विविध शैलियों उन्होंने अनेक कालों की रचना की, उनमें 13 काव्य ही उपलब्ध हैं। 17 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा सारे उत्तर हिन्दुस्तान को राममय बना दिया।

तुलसीदास निर्गुण और सगुण में, भक्ति और ज्ञान में, शैव एवं वैष्णव में समन्वय लाये। राजा – प्रजा, मिता – पुत्र, पति– पत्नी, सास – बहू , गुरु – शिष्य आदि का सांस्कृतिक सम्बन्ध उन्होंने स्थापित किया। तुलसीदास 'लोकनायक' के रूप में 'कलियुग के वाल्मीकि' के रूप में माने जाते हैं।

तुलसीदासकृत काव्य :-

(1) **रामचरितमानस** :- राम को केन्द्र बिन्दुबना कर लिखा गया महाकाव्य। इसकी भाषा व्यवस्थित पश्चिमी अवधी और शैली चौपाई – दोहा शैली।

(2) **विनय-पत्रिका** :- भक्ति – प्रधान प्रबन्धात्मक मुक्तक, व्यवस्थित व्रज भाषा भक्त कवियों की पद शैली।

(3) **गीतावली** :- प्रबन्धात्मक मुक्तक, व्रजभाषा, पदशैली।

(4) **कृष्ण गीतावली** :- मुक्तक काव्य, व्रजभाषा, पदशैली।

(5) **कवितावली** :- प्रबन्धात्मक मुक्तक, अवधी भाषा, कवित्त–सवैया शैली।

(6) **जानकी मंगल** :- राम और सीता के विवाह विषयक काव्य, भाषा अवधी।

(7) **पार्वती मंगल** :- पूर्वी अवधी भाषा में रचित मुक्तक काव्य, पद शैली।

(8) **रामलला नहछू** :- पूर्वी अवधी में रचा गया मुक्तक काव्य।

(9) **हनुमान बाहुक** :- कवित्त–सवैया शैली में लिखा गया मुक्तक काव्य।

(10) **दोहावली** :- मुक्तक काव्य, दोहा शैली ।

(11) **बरवैरामायण** :- पूर्वी अवधी भाषा में और बरवा शैली में लिखा गया काव्य।

(12) **वैराग्य संदीपनी** :- पूर्वी अवधी भाषा और चौपाई शैली में लिखा गया मुक्तक ।

(13) **रामाज्ञा प्रश्न** :- अवधी भाषा में और चौपाई शैली में लिखा गया मुक्तक।

तुलसीदास की प्रसिद्धि प्रधानतया रामचरितमानस के कारण है।

नाभादास :- 'भक्त माल' नाभादास का प्रसिद्ध काव्य है। इस रचना का उद्देश्य जनता में भक्ति का प्रचार करना है।

कृष्णचन्द चौहान :- इन्होंने 'रामायण महानाटक' की रचना की।

हृदयराम :- इन्होंने व्रजभाषा में 'हनुमन्नाटक' की रचना की।

राममल्ल पाण्डेय :- इन्होंने 'हनुमच्चरित' काल की रचना की।

(घ) कृष्णभक्ति शाखा :-

सूरदास :- सूरदास कृष्णभक्ति शाखा के प्रवर्तक एवं सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। धर्म, साहित्य एवं संगीत के जगत में वे बेजोड हैं। वात्सल्य रस पोषण में वे अप्रमेय हैं। तुलसी और सूर हिन्दी साहित्य के चन्द्रमा और सूर्य के समान हैं – 'सूर सूर तुलसी ससि।'

सूरसागर, सूरसारावली एवं साहित्य लहरी उनके काव्य हैं। सूरदास की भाषा व्यवस्थित व्रज है। रसखान और मीराबाई के अलावा कृष्णभक्ति शाखा के अष्टछाप के कवि हैं – सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्द दास, कृष्णदास, छीत स्वामी, चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी तथा नन्ददास
1. वल्लभाचार्य सूरदास के गुरु हैं जो पुष्टिमार्ग के आचार्य हैं।

नन्ददास :- रासपंचाध्यायी, भंवरगीत, भागवत दशम स्कन्ध, रूप मंजरी, रसमंजरी, मानमंजरी, ज्ञानमंजरी, चिन्तामणिमाला, दानलीला, माननीला, सुदामा चरित आदि इनके काव्य हैं।

कृष्णदास :- जुगलगान इनका काव्य है।

चतुर्भुजदास :- द्वादश यश, भक्ति प्रताप और हितजू इनके काव्य हैं।

छीत स्वामी :- व्रजभूमि की महिमा का वर्णन सम्बन्धी फुटकल रचनाएँ इन्होंने की हैं।

गोविन्द स्वामी :- इन्होंने फुटकल पद लिखे हैं।

हित हरिवंश :-राधावल्लभ संप्रदाय की स्थापना करके इन्होंने मधुर पदलिखे।

मीराबाई :- राजस्थान के मेडता के राठौर रतन सिंह की पुत्री। कृष्ण भक्ति की तल्लीनता में रचे हुए इनके पद 'मीराबाई पदावली' नाम से विख्यात हैं। मीरा की 'मधुर भक्ति' है।

रसखान :- मुसलमान होते हुए भी प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि हैं। वे विट्ठलनाथ के शिष्य हैं।

4. निष्कर्ष :-

पन्द्रहवीं शताब्दी में बंगला में बहुत कम भक्ति काव्य रचा गया है। इने – गिने कवियों द्वारा कृष्ण भक्ति सम्बन्धित कुछ रचनाएँ प्राप्त होती हैं। हिन्दी में आकर भक्तिलाल 'स्वर्ण युग' कहलाता है। निर्गुण और सगुण के अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक कबीर, प्रेम मार्गी शाखा के प्रधान कवि मलिक मुहम्मद जायसी निर्गुण भक्ति मार्ग की धारा को पल्लवित किया। गोस्वामी तुलसीदास रामकाव्यों की रचना कर के विश्व विख्यात हुए। सूरसागर की रचना के द्वारा सूरदास ने कृष्णतत्व को पल्लवित किया। मुख्य रूप से तुलसी और सूर ने अपनी कृतियों द्वारा भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान किया।

Lesson Writer

ऐनम्पूडि. कविता , एम.ए.

प्र.17. उत्तर - मध्य कालीन बंगला एवं हिन्दी साहित्य की तुलना कीजिए।

रूपरेखा :-

1. उत्तर– मध्यकालीन बंगला साहित्य
   - (अ) वैष्णव साहित्य
   - (क) गीतिकाव्य
   - (ख) चरितकाव्य
   - (आ) अनुवाद साहित्य
   - (च) अनुवाद
   - (छ) मंगल – काव्य
2. हिन्दी साहित्य का उत्तर – मध्यकाल
   - (1) प्रस्तावना
   - (2) रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ
   - (3) रीतिकाल के प्रमुख कवि

1. उत्तर - मध्यकालीन बंगला साहित्य :-

चैतन्य महा प्रभु का आविर्भाव बंगाल के सांस्कृतिक इतिहास में एक क्रातिकारी घटना है। उन्होंने बंगला के साहित्य पर तथा उत्तर भारत के सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। चैतन्य के बृन्दावन स्थित छः गोस्वामी शिष्यों ने वैष्णव मत को संहितावबद्ध कर उसको एक प्रामाणिक रूप प्रदान किया। फलतः बंगाल में एक नये प्रकार के साहित्य एवं काव्य ग्रन्थों का प्रणयन किया गया।

(अ) वैष्णव साहित्य :-

वैष्णव साहित्य के दो भाग हैं –

(क) गीतिकाव्य और (ख) चरितकाव्य

(क) गीतिकाव्य :-

गीतिकाव्य कवियों की संख्या प्राय: 170 है। मुरारी गुप्त नरहरि सरकार वासुदेव घोष और रामानन्द वसु उनमें प्रमुख हैं। अनेक गीत गौरांग प्रभु चैतन्य विषयक हैं और वे तीन भागों में बाँटा जा सकता है –

(1) गौरांग के जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ, दशाएँ, कृत्य आदि का वर्णन ।

(2) गौरांग का कृष्णावतार का रूप।

(3) गौरांग के दिव्य तत्त्वों का अभिभूत।

कृष्ण विषयक अधिकांश कविताएँ राधा व कृष्ण की लीलाओं पर आधारित हैं।

(ख) चरित काव्य :-

16 वीं शताब्दी के बाद बंगला में चरित काव्य – सृजन की परम्परा चली। अधिकांश चरित काव्य चैतन्य के जीवन को आधार बनाकर लिखे गये। उनके व्यक्तित्व, देवत्व एवं मानवत्व को समन्तित करके चैतन्य चरितामृत तथा चैतन्य चन्द्रोदय नाटक महत्त्वपूर्ण है। दोनों के लेखक कवि परमानन्द सेन हैं। वृन्दावनदास ने चैतन्य भागवत की रचना की। पश्चात कवियों ने विविध काव्यों की रचना की। 17 वीं शताब्द के महत्वपूर्ण कवि श्रीनिवास नरोत्तम और श्यामानन्द हैं।

(आ) अनुवाद साहित्य :-

(च) अनुवाद :-

बंगला का अनुवाद साहित्य प्रधानतया तीन ग्रन्थों पर आधारित है – रामायण, महाभारत एवं भागवता कवयत्री चन्द्रावती, कवि अद्‌भुता चार्य, षष्ठीश्वर सेन, काशीराम आदि रचनाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। 15 वीं शताब्दी में मालाधार वसु, 16 वीं शताब्दी में आचार्य रघुनाथ पण्डित प्रमुख अनुवादक माने जाते हैं। 15 वीं शताब्दी में मालाधर वसु कृत तथा 16 वीं शताब्दी में आचार्य रघुनाथ पण्डित एवं श्यामदास कृत रूपान्तर उल्लेखनीय हैं।

(छ) मंगल - काव्य :-

हम अन्यत्र 16 वीं शताब्दी के पूर्व के बंगला साहित्य के सन्दर्भ में मंगल काव्यों की चर्चा कर चुके हैं। उनमें दो मंगल काव्य विशेष उल्लेखनीय हैं – मनसा मंगल और चण्डी – मंगल।

16 वीं शताब्दी में कवि मुकुन्ददास कृत चण्डी – मंगल एक श्रेष्ठ रचना कही जाती है।

मंगल काव्य का तीसरा प्रकार है धर्म – मंगल। धर्म– मंगल की रचना 17 वीं शताब्दी में ही मिलती है। पश्चिमी बंगाल के एक स्थानीय देवता को लेकर जो साहित्य रचा गया, उसका अधिकांश अंश 'धर्म–मंगल' में निहित है।

अन्य प्रकार के धर्म साहित्य में स्तव कृतियाँ आती हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है – **शून्य पुराण।** मध्यकाल के अन्तिम चरण 18 वीं शताब्दी में मेघराम चक्रवर्ती का नाम सर्वश्रेष्ठ मंगल कावव्य के रचयिता के रूप में लिया जाता है। धर्म–मंगल काव्यों में बंगाल में प्रचलित धर्म–पूजा की कथा वर्णित है।

शैव काव्य :-

मंगल काव्यों से सम्बद्ध एक अन्य प्रकार के काव्य – शैव काव्य की धारा चली। इस प्रकार के काव्य – ग्रन्थों को **शिवायन** कहा जाता है। इस परम्परा के काव्यों की संख्या बहुत कम है। इस धारा का सर्वश्रेष्ठ कवि **रमेश्वर** को माना जाता है, जो 1800 ई. से 1825 ई. के बीच किसी समय विद्यमान था।

पूर्वी बंगाली गीत :-

17 वीं – 18वीं शताब्दी में बंगाल के ग्राम – जन के मध्य प्रचलित गीतों का संकलन डॉ. टी. सी. सेन और उनके सहायकों ने प्रकाशित किये। ये पूर्वी बंगाल के अपढ़ किसानों की रचनाएँ प्रतीत होती हैं। इनमें बंगाल के विशिष्ट परिवेश को लेकर बंगाल में प्रचलित प्रेमकथाएँ वर्णित हैं। ये गीत भावपूर्ण हैं। इनमें करुणा का कोमल स्वर स्फुरित है। ये वर्णनात्मक गेय लम्बी कविताएँ हैं।

18 वीं शताब्दी के अन्त तक, यानी मध्यकाल के अन्तिम चरण तक बंगला साहित्य में किसी – न–किसी रूप में भक्ति एवं धर्म से सम्बन्धित रचनाएँ की जाती रहीं। ये रचनाएँ अभिजात और ग्रामीण दोनों वर्गों द्वारा की गयीं और उनमें लोकप्रिय रहीं।

18 वीं शताब्दी को बंगला साहित्य का ह्रासकाल कहा जा सकता है। रूप की दृष्टि से काव्य के किसी क्षेत्र में नया प्रयास नहीं किया गया । मात्र पुरानी लीक पीटी गयी। मुखख्य कारण यह रहा कि यह मुसलमानों के विघटन का काल था और अराजकता जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इस समय काव्य पंडित वर्ग में सीमित हो गया और अलंकरण ग्रन्थों का प्रणयन

किया गया। 18 वीं शती के उत्तरार्द्ध में इस प्रकार के काव्य के रचयिताओं में **कवि भारतचन्द्र** का नाम उल्लेखनीय है। काव्य के विषय की दृष्टि से 'विद्यासुन्दर' नाटक का बोलबाला रहा। विद्यासुन्दर की कथा को संस्कृत से ग्रहण किया गया। उसमें बंगला के कवियों ने आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये। कवि भारतचन्द्र कृत विद्यासुन्दर को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जाता है कि कवि भारतचन्द्र छन्दों और अलंकारों के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। भारतचन्द्र वस्तुत: संक्रान्ति काल के कवि हैं। मध्यकालीन परम्परा उन्हें उत्तराधिकार में मिली थी और नवयुग के अग्रदूत के रूप में वह प्रकट हुए थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'कालिक मंगल' में विद्यासुन्दर कथा का उपयोग किया है।

भारतचन्द्र ने मानवीय मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा का प्रयास किया जो देवी – देवताओं का माहात्य बहुत अधिक बढ़ जाने के फलस्वरूप क्षतिग्रस्त हो गया था। इसी समय के एक अन्य महत्वपूर्ण कवि हैं **रामप्रसाद सेन।** इनकी कीर्ति के आधार हैं शक्ति विषयक भक्तिपूर्ण गीत, जो आगमनी संगीत और विजया संगीत के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि मध्यकालीन बंगला साहित्य को समृद्ध करने में मुसलमान कवियों एवं मुसलमान आश्रयदाताओं का योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है।

बाउल गीतों में भी हिन्दू विचारों और मुसलमान विचारों के मध्य समन्वय हुआ। बाउल गीत ग्रामीण बंगाल के संत कवियों द्वारा रचित थे, जिन्होंने संसार से वैराग्य ले लिया था और किसी दिव्य – प्रेम के उन्माद में मग्न प्रतीत होते थे।

2. हिन्दी साहित्य का उत्तर - मध्यकाल :-

1. प्रस्तावना :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने इस काल को '**रीतिकाल**' का नाम दिया है। इस काल में अधिकांशत : रीतिग्रन्थ – काव्य के अंगों – उपांगों – रस, अलंकार, नायिका – भेद आदि का वर्णन करने वाले ग्रन्थ लिखे गये। अत: इस कालावधि को हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल का जाता है।

प्रथम रीति ग्रन्थ आचार्य केश्वदास ने लिखा था और उन्होंने ही हिन्दी में रीति – निरूपण का मार्ग प्रशस्त किया। इस कारण आचार्य केशवदास के समय से ही रीतिकाल का आरम्भ माना जाता है। हिन्दी के रीतिकाल में मुख्यत: तीन प्रकार की रचनाएँ लिखी गयीं –

रीति सम्बन्धी, भक्ति सम्बन्धी और **नीति सम्बन्धी**, जो दोहों में हैं। आचार्य केशवदास ने राम-काव्य परम्परा के अन्तर्गत रामचन्द्रिका महाकाव्य की रचना की तथा सेनापति ने रामरसायन एवं रामकथा वर्णन के अन्तर्गत कविता लिखे। कुछ अनन्य कवियों ने फुटकल छनन्द लिखे। कृष्ण काव्य परम्परा के अन्तर्गत प्राय: अनेक कवियों लिखे। कुछ अन्य कवियों ने फुटकल छन्द लिखे। ये छन्द प्राय: भ्रमरगीत परम्परा से सम्बन्धित हैं। इस क्षेत्र में कवि देव और बिहारी के नाम उल्लेखनीय हैं। सोमनाथ ने तो एक व्यवस्थित ग्रन्थ रास पंचाध्यायी की रचना की। रीतिकाल के कवियों को सामान्यत: तीन वर्गों में रखा जा सकता है - (क) **रीतिसिद्ध कवि** जिन्होंने लक्षण उदाहरण की शैली पर व्यवस्थित काव्य- रचना की। इनमें प्रमुख नाम हैं - केशवदास, पद्माकर, देव, मतिराम एवं लाल। भूषण ने वीर रस में लक्षण ग्रन्थ लिखा। (ख) **रीतिबद्ध कवि** जिन्होंने केवल उदाहरण स्वरूप छन्द लिखे। इस वर्ग के अन्तर्गत कवि बिहारी एवं सेनापति आते हैं। (ग) **रीति - मुक्त या स्वच्छन्द कवि** - इस वर्ग के अन्तर्गत वे कवि जिन्होंने रीति - परम्परा को त्यागकर स्वतन्त्र रूप से रचनाएँ कीं। रीति कवियों ने शृंगार वर्णन के अन्तर्गत राधा - कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया जबकि इन रीति मुक्त या स्वच्छन्द कवियों ने अपने व्यक्तिगत प्रेम को अभिव्यक्ति प्रदान की। इस वर्ग के कवि हैं - घनानन्द, बोधा और ठाकुर ।

2. रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ :-

शृंगारप्रियता - शृंगार रस वर्णन के अन्तर्गत - (1) संयोग शृंगार और विप्रलम्भ शृंगार दोनों के वर्णन लिखे गये, (2) वियोग - शृंगार की प्रधानता रही, (3) वियोग-वर्णन कहीं - कहीं ऊहात्मक हो गया, (4) संयोग शृंगार के वर्णनों में अश्लीलता का समावेश हो गया। (5) नायिका - भेद - कथन की प्रधानता रही, (6) वियोग शृंगार के अन्तर्गत बारहमासे और षड्ऋतु वर्णन लिखे गये।

केवल भूषण कवि ने वीर रस में रचना की।

पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति :-

रीतिकाल के कवि राजाश्रय में काव्य - रचना करते थे। वे आश्रय - दाताओं को प्रसन्न करने के लिए अपने काव्य में आलंकारिक चमत्कार एवं बहुज्ञता का समावेश करते थे।

खुशामद की प्रवृत्ति :-

फारसी के कसीदों की प्रवृत्ति पर हिन्दी के दरबारी कवियों ने अपने आश्रय-दाताओं की चाटुकारिता में अनेक छन्द लिखे।

ब्रजभाषा का संस्कार :-

कविता की भाषा ब्रजभाषा थी जिसमें अरबी - फारसी के शब्दों एवं मुहावरों के खुलकर प्रयोग किये गये। संस्कृत की कोमलकान्त पदावली के प्रयोग द्वारा ब्रजभाषा के अपूर्व माधुर्य एवं ध्वन्यात्मकता प्रदान की गयी। इन कवियों ने लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा भाषा की अभिव्यंजना शक्ति को श्रेष्ठता प्रदान की। यह ब्रजभाषा के चरमोत्कर्ष का काल कहा जा सकता है। 'रीति मुक्त' कवियों की सामान्य प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं -

(1) इन्होंने रीति की सीमाओं के बाहर जाकर विस्तृत क्षेत्र में अभिव्यक्ति हेतु लाक्षणिक एवं व्यंग्यमूलक पद्धति को अपनाया।

(2) इन कवियों ने भक्त कवियों की भाँति अपने प्रेम को उन्मुक्त रखा और स्वानुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति की। इसको वैयक्तिकता की संज्ञा दी जा सकती है।

(3) इन कवियों ने आत्मनिवेदन की शैली अपनाया। फलतः इनकी विरह - उक्तियाँ अधिक मार्मिक बन गयी हैं।

(4) रीति कवियों ने नारी के सौन्दर्य का वर्णन नख - शिख पद्धति पर किया, परन्तु इन कवियों ने नारी के सौन्दर्य के प्रभाव की व्यंजना अनुभूतिपूर्ण शब्दों में की। रीतिमुक्त कवियों के सौन्दर्य - वर्णन में हमको छायावादी सौन्दर्य-वर्णन की पूर्व-पीठिका के दर्शन होते हैं।

(5) रीति कवियों के प्रकृति - वर्णन उद्दीपन रूप में एवं अर्थग्रहण रूप में किये गये हैं। इन रीतिमुक्त कवियों ने भावानुभूति परक प्रकृति वर्णन किये। इनकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत एवं प्रांजल है। वह अलंकरण भार से बहुत कुछ मुक्त है। पं. रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिमुक्त कवि घनानन्द की भाषा को आदर्श ब्रजभाषा कहा है। ठाकुर की कविता में बुन्देळखण्डी भाषा की शब्दावली पग - पग पर अपनी छटा दिखाती है।

3. रीतिकाल के प्रमुख कवि :-

हिन्दी रीतिकाल के प्रवर्तक **आचार्य कवि केशवदास** का जन्म सन् 1555 में और मृत्यु सन् 1617 के आसपास हुई। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे और ओरछा – नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह की सभा में रहते थे। ये काव्य में अलंकार को प्रधान मानने वाले आचार्य थे। ये संस्कृत के महान विद्वान थे। इनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ और अपेक्षाकृत क्लिष्ट है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं – रामचन्द्रिका (महाकाव्य), रसिकप्रिया, कविप्रिया, जहाँगीर जसचन्द्रिका, वीरसिंह चरित (प्रबन्ध काव्य), विज्ञान गीता तथा रतन बावनी (यह ग्रन्थ छप्पय छन्द में है और इसमें वीर रस का अच्छा वर्णन है)।

केशव ने पारिभाषिक एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। इस कारण इनकी ब्रजभाषा प्राय: दरूह हो जाती है।

चिन्तामणि त्रिपाठी :-

रस मत का अनुसरण करते हुए इन्होंने सर्वप्रथम रीतिग्रन्थ लिखा। इस कारण कुछ इतिहासकार इनको हिन्दी रीतिकाल काल प्रवर्त्तक मानते हैं। इनका जन्म–स्थान जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश में है। ये चार भाई थे तथा चारों कवि थे – चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर। प्रथम तीन बहुत यशस्वी हुए। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है– 'कविकुल कल्पद्रुम' जिसका रचनाकाल सन् 1650 है। इनके अन्य ग्रन्थ हैं – छन्द विचार, काव्य–विवेक, काव्य – प्रकाश तथा रामायण (अनेक छन्दों में लिखित, मुख्य छन्द कवित्त)।

सूरति मिश्र :-

यह आगरा के रहने वाले थे। इनके द्वारा रचित रीति ग्रन्थ हैं – अलंकार माला, रस रत्नमाला, सरस – रस, रस –ग्रहक चन्द्रिका, नखशिख, काव्य सिद्धान्त और रस – रत्नाकर। इन्होंने आचार्य केशवदास प्रणीत रसिकप्रिया एवं कविप्रिय की ब्रजभाषा में टीका लिखी।

आचार्य भिखारीदास :-

यह प्रतापगढ़ जिला (उ.प्र.) के रहने वाले थे। यह रीतिकाल के अग्रणी आचार्यों में गिने जाते हैं। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है – काव्य– निर्णय। इनके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थ हैं – रस सारांश, छन्दोर्ण पिंगल, श्रृंगार निर्णय, विष्णु पुराण भाषा (दोहा – चौपाई में), चन्द प्रकाश, शतरंज शतिका शतिका तथा अमर प्रकाश (संस्कृत अमरकोश, भाषा पद्य में)।

सोमनाथ :-

यह मरुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे और भरतपुर (राजस्थान) के रहने वाले थे। इन्होंने सन् 1737 में 'रसपीयूष निधि' नामक एक विस्तृत रीतिग्रन्थ बनाया जिसमें पिंगल, काव्य लक्षण, प्रयोजन, शब्द शक्ति, ध्वनि, भाव, रस, रीति, गुण – दोण आदि विषयों का निरूपण है। इनके रचे हुए अन्य उपलब्ध ग्रन्थ हैं – कृष्ण लीलावती, पंचाध्यायी, सुजान विलास, सहिंासन बत्तीसी।

ग्वाल कवि :-

यह मथुरा के रहने वाले थे। इन्होंने चार रीतिग्रन्थ लिखे – रसिकानन्द, रसरंग, कृष्ण जूको नखशिख तथा दूषण दर्पण।

बोधा :-

यह राजापुर जिला बाँदा (उ.प्र.) के रहने वाले थे। इन्होंने प्रेम–निरूपण के अनेक छन्द लिखे। इनकी लिखी हुई दो पुस्तके हैं – विरह वारीश और इश्कनामा।

बिहारीलाल :-

यह रीतिकाल के रीतिबद्ध प्रतिनिधि कवि हैं। यह माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनका जन्म ग्वालियर में हुआ था। इनका रचा हुआ ग्रन्थ केवल एक हैं – बिहारी सतसई। इस ग्रन्थ की श्रेष्ठता ने इनको अमर कवि बना दिया। रामचरितमानस के बाद बिहारी सतसई की टीकाओं की संख्या सर्वाधिक है। इसके दोहे अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इनकी शैली की समाहार शक्ति अद्‌भुत है। वह गागर में सागर वाली बात चरितार्थ करती है। इनकी सतसई के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है –

सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।
देखत में छोटे लगें, घाव करैं गम्भीर।

बिहारी ध्वनि सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

पद्‌माकर भट्ट :-

यह रीतिकाल के अन्तिम प्रतिनिधि कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने परवर्ती कवियों पर गहरा प्रभाव डाला। इनके ग्रन्थों के नाम हैं – पद्‌माभरण, जगद्विनोद, हिम्मत बहादुर विरुदावली, प्रबोध पचासा, गंगालहरी, राम रसायन, भाषा हितोपदेश, ईश्वर पचीसी, अलीजाह प्रकाश तथा प्रतापसिंह विरुदावली।

मतिराम :-

यह कानुपुर जिला (उ.प्र.) के रहने वाले थे और इनका जन्म सन् 1617 के आसपास हुआ था। इनके ग्रन्थ हैं ललित कलाम (अलंकार ग्रन्थ), रसराज, छन्द सार, साहित्य-सार और लक्षण-शृंगार।

भूषण :-

यह चिन्तामणि त्रिपाठी और मतिराम के भाई थे। यह वीररस के कवि हैं। एक प्रकार से रीति के शृंगारी कवियों के मध्य अपवाद स्वरूप। इनके ग्रन्थ हैं - शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक, भूषण उल्लास, भूषण हजारा तथा दूषण हजारा।

देव :-

यह इटावा के रहने वाले सनाढ्य अथवा कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में सम्भवत: सबसे अधिक ग्रन्थ - रचना इन्हीं की है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या 72 बतायी जाती है। इनके निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित और उपलब्ध हैं -

(1) भाव विलास, (2) भवानी विलास, (3) अष्टयाम, (4) सुजान विनोद, (5) प्रेम-तरंग, (6) राग रत्नाकर, (7) कुशल विलास, (8) देवचरित्र, (9) प्रेम - चन्द्रिका, (10) जाति विलास, (11) रस- विलास, (12) काव्य - रसायन या शब्द रसायन, (13) सुख सागर तरंग, (14) वृक्ष-विलास, (15) पावस-विलास, (16) ब्रह्म दर्शन पचीसी, (17) तत्व - दर्शन फचईशई, (18) ्आथअण -धर्म्म फचईशई, (19) जगद्दर्शन पचीसी, (20) रसायन लहरी, (21) प्रेम-दीपिका, (22) रसानन्द -लहरी, (23) सुमिल - विनोद, (24) राधिका विलास, (25) नीति शतक और (26) नखशिख प्रेम - दर्शन।

रीतिकाल के कवियों में इनका बड़ा गौरवपूर्ण स्थान है।

सेनापति :-

यह अनूप शहर (उ.प्र.)के रहने वाले थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है - कविता प्रवाह। इसमें पाँच तरंगें हैं। ऋतु - वर्णन और श्लेष वर्णन अद्वितीय है। श्लेष - वर्णन के 96 कवितों में श्लेष का निर्वाह इनके भाषाधिकार का द्योतक है।

रीतिकाल में वस्तुत: अगणित कवि हुए। यह ब्रजभाषा का उत्कर्ष काल एवं **हिन्दी काव्य का स्वर्ण युग** कहा जा सकता है। चमत्कार एवं पाण्डित्य की दृष्टि से इस काल की कविता स्पृहणीय है। रीतिकाल के अन्य **प्रमुख** कवियों के नाम इस प्रकार हैं –

बेनी महाराज जसवन्त सिंह, मंडल, कुलपति मिश्र, सुखदेव मिश्र, कालिदास त्रिवेदी, राम नेवाज, श्रीधर या मुरलीधर, सूरति मिश्र, कवीन्द्र (उदयनाथ), वीर, रसिक सुमति, गंजन, अलीमुहिब खाँ (प्रीतम), भूपति (राजा गुरुदत्त सिंह), तोषनिधि, दलपति राय और बंशीधर, रसलीन – गुलामनबी (आँख के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध दोहा इन्हीं का हैं – ''अमिय हलाहल मद भरे सेत स्याम रतनार॥ जियत मरत झुक झुक परत जेहि चितवत इक, रघुनाथ) दूलह, कुमार मणि भट्ट, शम्भुनाथ मिश्र, शिवसहाय दास, रूप साहि, ऋषिनाथ, बौरी साल, दत्त, रतन कवि, नाथ हरिनाथ, मनीराम मिश्र, चंदन देवकीनंदन, महाराज रामसिंह, भान कवि, थान कवि, बेनी बंदीजन, बेनी प्रवीन, जसवंत द्वितीय, यशोदानंदन, करन कवि, गुरदीन पाण्डे, ब्रह्मदत्त, रसिक गोविन्द, बनवारी, सबल सिंह चौहान, वृंद छत्रसिंह कायस्थ, बैताल, आलम, गुरु गोविन्द सिंह जी, बाल कवि, रस निधि, महाराज विश्वनाथ सिंह, भक्तवर नागरी दास जी, जोधराज, बख्शी हंसराज, अलबेली अलि, चाचा हित हरिवंशदास, गिरिधर कविराज, भगवत रसिक, श्री हठी जी, गुमान कवि, सूदन, ब्रजवासी दास, बोधा असनी वाले प्राचीन ठाकुर असनी वाले दूसरे ठाकुर, तीसरे ठाकुर बुन्देलखण्डी ललकदास, खुमान, गिरिधर दास और द्विजदेव महाराज मानसिंह।''

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र.18. आधुनिक काल में रचित बंगला एवं हिन्दी साहित्य की तुलना कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

18 वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में पाश्चात्य शासन एवं विचारधारा ने भारतीय चिन्तन को एक नवीन दिशा प्रदान की। राजा राममोहन राय ने इस प्रभाव को विभिन्न माध्यमों से व्यक्त करने का प्रयास किया। इसी के साथ सारी दिशाओं में परिवर्तन की लहर पल्लवित हुई।

19 वीं शताब्दी का बंगला साहित्य :-

अंग्रेजी साम्राज्य की शक्ति और प्रतिष्ठा के साथ इस शताब्दी का प्रारम्भ होता है। वस्तुतः यह संक्रान्ति का काल था। ईश्वरचन्द्र गुप्त 19 वीं शताब्दी के प्रमुख कवि हैं। उन्होंने अपने आसपास की वस्तुओं का सूक्ष्म वस्तुओं का निरीक्षण करके समकालीन घटनाओं के मौलिक रूप का अध्ययन किया और अपनी चुटीली शैली में इनका विशद वर्णन किया।

2. आधुनिक कालीन बंगला काव्य :-

नंदलाल, दीनबन्धु और बंकिमचन्द्र बंगला के आधुनिक युग के प्रमुख कवि माने जाते हैं। इनों तीनों कवियों पर ईश्वरचन्द्र गुप्त का प्रगाढ़ प्रभाव था।

इस युग में लोकगीतों एवं लोकगाथाओं की परम्परा मिलती है जो बहुत समय से चली आती है। संक्रान्ति काल में इसका स्वरूप बहुत कुछ बदल गया।

19 वीं शताब्दी में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ बंगला साहित्य में गद्य की परम्परा का प्रवर्तन होता है। विलियम केरी और उनके सहयोगी मृत्युंजय को बंगला गद्य को सुव्यवस्थित करने का श्रेय दिया जाता है। बंगला गद्य के सशक्त लेकक के रूप में हमारे सामने राजा राममोहन राय आते हैं। उन्होंने धर्म और सामाजिक आचारों से सम्बन्धित कई पुस्तकें लिखीं। कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपने को राजा राममोहन राय का ऋणी बताया है।

माईकेल मधुसूदन दत्त अंग्रेजी भाषा के साथ अनेक यूरोपीय भाषाओं के विद्वान थे। वह आधुनिक बंगाली साहित्य के सर्वप्रथम महाकवि बने। उन्होंने भारतीय और यूरोपीय साहित्य के मध्य स्थित खाई को पाटने वाले पुल का कार्य किया। बंगाल की उदीयमान चेतना के लिए उनका यह योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। इनके कुछ दिनों बाद बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का उदय हुआ जो बहुत बड़े उपन्यासकार बन गयेष बंकिमचन्द्र के युग में दो श्रेष्ठ कवियों का उदय हुआ – बिहारीला चक्रवतर्की और सुरेन्द्रनाथ मजूमदार। बिहारीलाल चक्रवर्ती एक प्रभावशाली कवि थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर पर भी उनका गहरा प्रभाव पड़ा।

हिन्दू जाति के वातावरण में रवीन्द्रनाथ का उदय हुआ, परन्तु यह जातिवाद उन्हें बहुत समय तक अपने प्रभाव में नहीं रख सका। इसके दो कारण थे – **पहला** वह कालिदास, जयेदव तथा अन्य वैष्णव कवियों से प्रभावित थे तथा **दूसरा -** वे शैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, ब्राउलिंग आदि रोमाण्टिक कवियों की कविताओं के प्रबल प्रेमी थे। रवीन्द्रनाथ प्रकृति के प्रेमी के रूप में विकसित हुए। उनमें बौद्धिक तीक्ष्णता एवं सहृदयता दोनों गुण विकसित थे। 26 वर्ष की अवस्था में वह एक बहुआयामी बंगला साहित्यकार के रूप में स्थापित हो गये थे। रवीन्द्रनाथ हिन्दू जातिवाद के कवि बन गये और साथ ही उन्होंने विश्व मानव की वन्दना की। बंकिमचन्द्र का हिन्दू जातिवाद प्रचलित रूढ़ियों का समर्थक था जबकि रवीन्द्रनाथ का हिन्दूवाद उपनिषदों एवं बुद्धदेव की शिक्षाओं पर आधारित था।

अब हम 19 वीं शताब्दी के बंगला काव्य पर एक अन्य दृष्टि से विचार करते हैं। उन दिनों बंगला काव्य की दो समानान्तर धाराएँ चली आ रही थीं – (1) वैष्णव पदावली एवं पौराणिक काव्य तथा (2) भारतचन्द्र के अन्नदामंगल के प्रकार के लौकिक कथा –काव्य। इनके अलावा बैठकी, संगीत आदि कई शैलियाँ प्रचलित थीं। वैष्णव पदावली और पौराणिक पद्धति के कवियों में विशेष रूप से उल्लेख योग्य हैं रघुनंदन गोस्वामी। इनके रचे हुए तीन काव्य – ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं – रामरसायन, गीतमाला तथा राधामाधवोदय। 'राम रसायन' में रामायण की कला है और यह प्रचलित बंगला रामायण साहित्य में सबसे बड़ा ग्रन्थ माना जाता है। शेष दो ग्रन्थों में श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। भारतचन्द्र की पद्धति के कवियों में सर्वश्रेष्ठ मदनमोहन वकलिंगार एवं ईश्वरचन्द्र गुप्त के नाम आते हैं। देश–प्रेम युक्त होने के कारण ईश्वरचन्द्र की कविता अधिक लोकप्रिय हुई। उस समय के उदीयमान कवि और शिक्षित युवक उनके प्रति आकृष्ट हुए थे। ईश्वरचन्द्र एवं उनके शिष्यों के आगमन के साथ ही वस्तुत: बंगला – काव्य में अभ्युदय की शती उद्घोषित हुई। ईश्वरचन्द्र ने बंगला काव्य में जिस आधुनिकता का सूत्रापत किया, वह उनके प्रिय शिष्य रंगलाल की कविता में विकसित हुई। रंगलाल ने संस्कृत, बंगला एवं अंग्रेजी में छोटी–मोटी अनेक रचनाएँ लिखने के अतिरिक्त तीन काव्य लिखे – पद्मिनी उपाख्यान, कर्मदेवी शूरसुन्दरी और कांची – कावेरी। वैसे रंगलाल का प्रथम काव्य था मेषमूषिक का युद्ध। यह एक छोटा – सा काव्य है जो सन् 1858 में प्रकाशित हुआ था। यह ग्रीक कवि होमर के एक व्यंग्य काव्य का अनुवाद है। रंगलाल नई परम्परा के कवि थे, परन्तु उन्होंने प्राचीन पद्धति की वर्णनात्मकता को अपनाया। इस प्रकार वह प्राचीन एवं नवीन काव्य के संगम बने।

दीनबन्धु मित्र ने आरम्भ में कुछ कविताएँ लिखीं। फिर बाद में नाटक की ओर प्रवृत्त हो गये। कविता के क्षेत्र में एक अन्य नाम का उल्लेख करना परम आवश्यक है और वह है कृष्णचन्द्र मजूमदार। इनका काव्य मुख्यत: धर्म और नीति विषयक है।

बीसवीं सदी में बंगला साहित्य का उदय उनकी रचना 'नैवेद्य' से होता है। इसमें अंग्रेजी की छन्द सॉनेट में लिखित 100 कविताओं का संग्रह है। ये कविताएँ राष्ट्र-प्रेम, आत्म तत्व आदि श्रेष्ठ विषयों से सम्बन्धित हैं। देश और मानव जाति को जो रवीन्द्रनाथ की देन है, उसमें इस पुस्तक का विशेष महत्व है।

रवीन्द्र ने बंग-भंग आन्दोलन के सन्दर्भ में अनेक दिव्यगीत लिखे। रवीन्द्रनाथ का राष्ट्रवाद वस्तुत: अन्तर्राष्ट्रवाद का पर्यायवाची था/ है। आरम्भ में कुछ लोगों ने इसकी आलोचना की थी, परन्तु बाद में घटिनत घटनाओं ने रवीन्द्रनाथ की मान्यता को स्थापित कर दिया।

रवीन्द्रनाथ के समकालीन कवियों में प्रमुख नाम हैं - देवेन्द्र नाथ सेन, अक्षर कुमार बडाल, द्विजेन्द्रलाल राय, सत्येन्द्र नाथ दत्त, करुणानिधान बैनेर्जी, जितीन्द्रनाथ सेन गुप्त और मोहितलाल मजूमदार। कुछ मुसलमान कवियों के नाम लिये बिना यह प्रसंग अधूरा ही रह जायेगा। इनमें प्रमुख नाम हैं - काजी इम्दामुल हक तथा लुत्फर रहमान। ये सच्चे मानवतावादी थे और इनकी शैली प्रभावशाली है। कुछ कवियों ने अंग्रेजी कविता से प्रभावित होकर रचनाएँ लिखीं। ये कवि अपने को अत्याधुनिक कहते हैं। इनकी रचनाएँ रवीन्द्रनाथ से एकदम हटकर हैं। प्रमुख नाम हैं - नरेशगुप्त, दिनेशदास और गोविन्द चक्रवर्ती।

शरतचन्द्र के पश्चात् कथा साहित्य में विभूतिभूषण का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। यह प्रकृति के बहुत बड़े प्रेमी थे। उनकी आधुनिकता एवं महानता का भेद यह है कि उनकी रचनाओं में प्रकृति के साथ मनुष्य के दैनिक सम्बन्ध की समझ और उसकी अभिव्यंजना के मामले में गहरी सहृदयता के दर्शन होते हैं। रवीन्द्रनाथ के बाद हमें कुछ ऐसे कवि मिलते हैं जिन्हें हम रोमाण्टिक कह सकते हैं, यथा - प्रमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव वसु, अचिंत्य सेन गुप्त, मौनीन्द्रपाल वसु, मनोज वसु और प्रमोद कुमार सान्याल।

इस पीढ़ी के बाद बंगला कविता के क्षेत्र में किसी सीमा तक शिथिलता दिखाई देती है तथा साहित्यकार गद्य साहित्य की ओर उन्मुख दिखाई देते हैं।

3. आधुनिककालीन हिन्दी काव्य :-

हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल के उदय के प्राय: वे ही कारण थे, जो बंगला साहित्य के सन्दर्भ में थे – पाश्चात्य शासन, पश्चात्य वैज्ञानिक चिन्तन एवं पाश्चात्य साहित्य। राजा राममोहन राय ने नवजागरण का शंख फूँका और स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द आदि के माध्यम से भारतीय जनमानस में चेतना आयी। बंगला साहित्य में जिस प्रकार भारतचन्द्र नवयुग के अग्रदूत के रूप में प्रकट हुए, उसी प्रकार हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का बहुआयामी व्यक्तित्व नवजागरण अथवा आधुनिक काल के प्रवर्त्तक के रूप में प्रकट हुआ। उन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, समालोचना, पत्रकारिता आदि सभी क्षेत्रों में हिन्दी साहित्य के रचनाकारों का मार्गदर्शन किया।

भारतेन्दु जी ने राधाकृष्ण की लीला विषयक की लीला विषयक कविताओं, सवैयों एवं दोहों की ब्रजभाषा में रचना की और साथ ही नवीन विषयों पर नवीन छन्दों में खड़ी बोली एवं उर्दू में रचनाएँ प्रस्तुत कीं। प्राचीन और नवीन का अद्‌भुत संगम उनके व्यक्तित्व में देखने को मिलता है।

हिन्दी साहित्य कोष, भाग - 2 :- *(ज्ञानमण्डल वाराणसी पृ. 409-410)* के अनुसार, ''इस समय द्रतेन्दु हरिश्चन्द्र की उनहत्तर छोटी – बडी रचनाएँ सम्मिलित हैं। उनमें मौलिक, सम्पादित, संकलित सभी प्रकार की रचनाएँ सम्मिलित हैं। भारतेन्दु की रचनाओं से ज्ञात होता है कि उन्होंने हिन्दी काव्य-साहित्य को विविधतापूर्ण और नवीन एवं व्यापक रूप प्रदान किया। काव्य – रचना की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक महान संगम की भाँति हैं जहाँ लगभग सभी साहित्य – धाराएँ मिलकर एक नवीन धारा को जन्म देती हैं, जो जीवन के प्रत्येक कोने को स्पर्श करती हैं। उनकी रचनाएं परम्परानुरूप और नवीन दोनों प्रकार की हैं। परम्परानुरूप – काव्य – रचनाओं में श्रृंगार, भक्ति, दिव्य-प्रेम आदि से सम्बन्धित रचनाएँ मिलती हैं। इन रचनाओं में भारतेन्दु ने मध्ययुगीन शैलियों का अनुसरण किया है। नवीन रचनाओं में राजभक्ति देशभक्ति, भाषोन्नति तथा अन्य अनेक सुधर सम्बन्धी विचार व्यक्त किये हैं। उनके मुख्य काव्य – ग्रन्थ इस प्रकार हैं –''

परम्परानुरूप साम्प्रदायिक पुष्टिमार्गीय रचनाएँ (32) :- उनकी प्रथम रचना भक्ति सर्वस्व सन् 1870 ई. में तथा अन्तिम रचना कृष्ण चरित्र 1883 ई. में प्रकाशित हुई।

परम्परागत रचनाएँ (13) :-इनमें प्रथम ग्रन्थ उत्तरार्द्ध भक्तमाल सन् 1876–77 ई. में तथा अन्तिम ग्रन्थतथा अन्तिम रचना सतसई श्रृंगार 1898 ई. में प्रकाशित हुई।

नवीन रचनाएँ (15) :- ये उल्लेखनीय हैं –स्वर्गवासी श्री अलवरत वर्णन अन्तलीपिका (1861 ई.), श्रीराम कुमार सुस्वागत पत्र (1869 ई.), सुमनांजलि, श्रीराम प्रिंस ऑफ वेल्स के पीड़ित होने पर कविता (सन् 1871 ई.), मुँह–दिखावनी (1874 ई.), श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन (1875 ई.), भारत भिक्षा (1875 ई.) मानसोपायन (1875 ई.), हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान (1877 ई.), मनोमुकुल माला (1877 ई.) भारत वीरत्व (1878 ई.), विजय वल्लरी (1881 ई.), विजयिनी विजय पताका या वैजयन्ती (1882 ई.) नये जमाने की मुकरी (1884 ई.), जातीय संगीत (1884 ई.), हिमनाष्टक (1884 ई.) आदि।

इन रचनाओं के अतिरिक्त भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकृत भक्ति, प्रेम–श्रृंगार और नवीन–विषय सम्बन्धी अनेक स्फुट दोहे, कवित, सवैये, पद, भजन, गजल (उर्दू में वह रक्षा नाम से कविता करते थे) आदि उपलब्ध हैं। व्यंग्य और हास्य की दृष्टि से उर्दू का स्थापा और बन्दर सभा उल्लेखनीय हैं। धर्म और स्वर्ग के नाम पर 'बकरी विलाप' उल्लेखनीय है।

पुरानी धारा के अन्य कवियों में प्रमुख हैं – सेवक (नायिका – भेद सम्बन्धी ग्रन्थ कालिदास), महाराज रघुराज सिंह रीवा नरेश (राम स्वयंवर – एक वर्णनात्मक प्रबन्ध काव्य), सरदार (साहित्य सरसी, षट् ऋतु, वाग्विलास, हनुमत भूषण, तुलसी – भूषण, श्रृंगार–संग्रह, राम रत्नाकर, साहित्य सुधाकर, रामलीला प्रकाश आदि कई ग्रन्थ)।

राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी गद्य के प्रवर्तकों में से एक हैं। इन्हों ने ब्रजभाषा में 'मेघदूत' का बहुत ही सरस अनुवाद किया, लछिराम भट्ट (मानसिंह सरक, प्रताप रत्नाकर आदि); नवनीत चौबे इन्हों ने ब्रजभाषा में अनेक फुटकर छन्द लिखे। उक्त कवियों ने केवल पुरानी परिपाटी पर कविता की। अब हम उन कवियों की चर्चा करते हैं जिन्होंने नवीन गीत के प्रवर्तन में योग दिया और साथ ही पुरानी परिपाटी के साथ भी अपना पूरा सम्बन्ध बनाये रखा – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताब नारायण मिश्र, उपाध्याय, पं. बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास और बाबू रामकृष्ण वर्मा।

इसी पुरानी धारा के कवियों में विशेष उल्लेखनीय कवि हैं – लाला सीताराम के पद्यानुवाद। पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय की ब्रजभाषा की कविताएँ, जगन्नाथदास रत्नाकर के

ब्रजभाष में रचे गये इनके ग्रन्थ हैं – गंगावतरण, उद्धव – शतक, प्रेमांजलि, प्रेम–पथिक, प्रेम–शतक आदि। इनकी गणना ब्रजभाषा के श्रेष्ठतम कवियों में की जाती है। दुलारेलाल भार्गव ने बिहारी सतसई की परम्परा में **दुलारे दोहावली** की रचना की।

आधुनिक काव्य क्षेत्र में दुलारेलाल भार्गव ने ब्रजभाषा काव्य –चमत्कार – पद्धति का एक प्रकार से पुनरुद्धार किया।

नई धारा - प्रथम उत्थान (सन् 1870-1900 ई.) :-

भारतेन्दु ने हिन्दी कविता की धारा को नये विषयों की ओर मोड़ा, जैसे – देश – भक्ति, लोक – हित, समाज – सुधार, मातृभाषा, हास्य – विनोद आदि। ब्रजभाषा के साथ खड़ी बोली को भी काव्य की भाषा बनाया। नवीन धारा के प्रथम उत्थान के भीतर प्रमुख कवियों के नाम हैं – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं. प्रतापनारायण मिश्र, पं. अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास, उपाध्याय, बदरीनारायण चौधरी आदि।

नई धारा - द्वितीय उत्थान (सन् 1900 - 1920 ई.) :-

श्रीधर पाठक की खड़ीबोली में कविता एकान्तवासी योगी के साथ खड़ी बोली कविता का आरम्भ और नई धारा के द्वतीय उत्थान को मानना चाहिए। इस धारा के अन्य प्रमुख कवि हैं–

पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' :-

यह पहले ब्रजभाषा में कविता करते थे। फिर खड़ी बोली की ओर आ गये। इन्होंने खड़ी बोली का प्रथम प्रियप्रवास लिखा, जो कृष्ण काव्य परम्परा के महत्वपूर्ण ग्रन्थों में आता है, राम काव्य परम्परा के अन्तर्गत इन्होंने 'वैदेही वनवास' महाकाव्य की रचना की। 'प्रियप्रवास' में संस्कृत वृत्तों में अतुकान्त छन्द लिखकर एक नई परम्परा का प्रवर्तन किया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी :-

नागरी तेरी यह दशा, अयोध्या का विलास आदि अनेक कविताएँ, इनका मुख्य योगदान है भाषा का परिष्कार।

मैथिलीशरण गुप्त :-

इन्होंने खड़ी बोली में अनेक ग्रन्थ लिखे और खड़ी बोली को कविता की भाषा बना दिया, यद्यपि यह भी आरम्भ में ब्रजभाषा में कविता करते थे। इनका महाकाव्य 'साकेत'

रामकाव्य परम्परा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इनके अन्य प्रबन्ध काव्य हैं – द्वापर, पंचवटी, जयद्रथ वध, कुणाल, वैतालिक, हिन्दू, अनघ, विष्णुप्रिया आदि। यह सही अर्थ में राष्ट्रकवि हैं। इनकी देशभक्ति का स्वर मानवता व्यापी है और कविता के ऊपर इनकी व्यक्तिगत साधना की गहरी छाप है। भारत–भारती इनकी प्रथम एवं सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है।

पं. रामचरित उपाध्याय :-

इन्होंने अनेक छोटी कविताएँ लिखीं। ये विदग्ध भाषण के रूप में हैं। रामचरित चिन्तामणि नामक एक बड़ा प्रबन्ध काव्य भी इन्होंने लिखा जिसमें कई प्रसंग अत्यन्त मार्मिक हैं।

पं. गिरिधर शर्मा नवरत्न :-

छोटी कविताओं के अलावा इन्होंने रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि का बहुत सुन्दर पद्यबद्ध अनुवाद किया है।

पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय :-

(मृगी दुखमोचन) – यह वस्तुत: द्विवेदी – मंडल के कवि रहे, जिन्होंने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्रोत्साहन प्राप्त किया।

इनके अलाचा कुछ कवि ऐसे देवी, प्रसाद पूर्ण, पं. नाथूराम शंकर शर्मा, पं. गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, सत्यानारायण कविरत्न, लाला भगवानदीन, पं. रामनरेश त्रिपाठी तथा पं. रूपनारायण पाण्डेय, पं. रामनरेश त्रिपाठी, पं. श्रीधर पाठक द्वारा प्रशस्त पथ पर चलने वाले द्वितीय उत्थान के कवि हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं, तीन खण्ड काव्य – मिलन, पथिक और स्वप्न।

नई धारा - तृतीय उत्थान (सन् 1920 से 1936 ई.) :-

इस तृतीय उत्थान के युग को हिन्दी साहित्य का छायावाद का युग कहा जाता है। छायावाद वस्तुत: हिन्दी – काव्य में सर्वप्रथम नवीनता का संदेश लेकर आया। इसको पुरानी पीढ़ी के आलोचकों का कोप–भाजन बनना पड़ा। ये लोग इसको हवाई कविता कहते थे। इस वर्ग के समालोचकों में पण्डित रामचन्द्र शुक्ल अग्रगण्य थे। उनके मतानुसार छायावाद जीवन से दूर रहता है और इसमें लोक – संस्कृति की छाया तक नहीं रहती, परन्तु छायावाद के कवियों की अनुभूति की सच्चाई के कारण उसका महत्व स्वीकार किया जाने लगा। छायावाद के भावपक्ष में वेदना और दु:ख की प्रधानता है। प्रथम विश्व–युद्ध के बाद औपनिवेशिक स्वराज्य देने के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की वायदाखिलाफी तथा जलियांवाला बाग के हत्याकांड के

भावुक दृश्यों ने जनता को झकझोर दिया था। छायावाद के कवियों का प्रत्यक्ष दु:खवाद मात्र भौतिक जगत से सम्बन्धित न होकर वास्तव में आध्यात्मिक है। छायावाद की कविता में रोदन और गायन का विचित्र सम्बन्ध है।

छायावाद के मुख्य स्तम्भ माने जाते हैं। **जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'** और **महादेवी वर्मा।**

छायावाद के नामकरण के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि यह कविता अनेक भाव – भंगिमाएँ लेकर आयी और इसने खड़ी बोली का संस्कार उसी प्रकार किया जिस प्रकार रीतिकाल के कवियों ने ब्रजभाषा का परिष्कार किया। इन कवियों ने छायावाद की कविता को आलंकारिता, ध्वन्यात्मकता, कोमलकान्त पदावली, प्रतीकात्मकता, प्रचुरता, संगीतात्मकता आदि विशेषताएँ प्रदान कीं। यह एक प्रकार से आदर्शवादी कविता है जिसमें प्रेम, श्रृंगार और देश –प्रेम की उदात्त अभिव्यक्ति है। प्रेम का क्षेत्र बहुत कुछ कल्पना लोक तक जाता है और वह आध्यात्मिक रूप धारण कर लेता है। छायावाद की कविता में नारी सौन्दर्य एवं प्रकृति – प्रेम सम्बन्धी अनेक श्रेष्ठ रचनाएँ की गयी हैं। इस वर्ग के कवियों ने कई श्रेष्ठ ग्रन्थ हिन्दी को प्रदान किये हैं – जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आँसू, लहर, झरना, प्रेम–पथिक); महादेवी वर्मा (रश्मि, नीहार, नीरजा, यामा तथा दीपशिखा); सुमित्रानन्दन पंत (उच्छवास, ग्रन्थि, ग्राम्या, पल्लव, पल्लविनी, गुंजन, युगान्त, उत्तर, स्वर्ण किरण, स्वर्णधूलि, युगवाणी, युगपथ तथा चिदम्बरा); सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (गीतिका, परिमल, अनामिका, तुलसीदास – खण्डाकाव्य)। इनकी कई कविताएँ अत्यन्त श्रेष्ठ एवं ओजपूर्ण हैं। इन्हें महाप्राण निराला कहा जाता है। इस युग की सर्वश्रेष्ट रचना है – **जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी'** महाकाव्य जिसमें मनु के रूप में मानव विकास की कहानी का रूपात्मक वर्णन है। द्वितीय पंक्ति के छायावादी कवियों में **डॉ. रामकुमार वर्मा** अग्रगण्य हैं।

अन्य प्रवृत्तियों को लक्ष्य करके भी इस युग में अनेक कवियों ने रचनाएँ कीं – मैथिलीशरण गुप्त ने अनेक अच्छे गीत लिखे। रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'कुरुक्षेत्र' खण्डकाव्य की रचना की । रसवन्ती आदि अन्य अनेक रचनाएं प्रस्तुत कीं। यह युग हिन्दी काव्य की समृद्धि का काल कहा जा सकता है।

विश्व की परिस्थितियों ने, विशेषकर रूस की क्रान्ति ने अनेक कवियों को प्रभावित किया। मार्क्सवाद की काव्यात्मक अभिव्यक्ति करने वाले **प्रगतिवाद** नामक कविता आन्दोलन

का जन्म हुआ। पिछले युग के अनेक कवियों के अलावा कई नये कवि उभरकर आये। पिछले युग के कवियों में पंत और निराला ने श्रेष्ठ रचनाएँ दीं। पंत के युगान्त एवं ग्रन्थि ग्रन्थ इसके उदाहरण हैं। प्रगतिवाद के अन्य सशक्त हस्ताक्षर हैं – नरेन्द्र शर्मा, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. रांगेय राघव, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सयायन 'अज्ञेय', केदारनाथ सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, रामेश्वर शुक्ल आदि। इन कवियों में रामधारी सिंह 'दिनकर' का विशेष स्थान है।

प्रगतिवाद की कविता के कवियों की दृष्टि बौद्धिकवादी एवं नास्तिकवादी है। उनके जीवन का आदर्श साम्यवाद है और वे कभी – कभी लाल सेना के गीत गाते हुए देखे जाते हैं, फ्रायड की काम – कुण्ठा प्रगतिवादी कविता का एक आवश्यक अंग है। फलत: वे नारी के मांसल सौन्दर्य का वर्णन करते हैं और उनके वर्णन यथास्थान अश्लील बन गये हैं।

प्रयोगवादी कवियों के प्रेरणा स्रोत हैं – पाश्चात्य लेखक इलियट, बोदलेयर, मलारके पाल वेलेरी एजरा पाउण्ड आदि। प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं – बौद्धिकता, यथार्थवाद, अहंवाद, असंगतियों की भरमार, जीवन की निस्सारता, पालयन, विद्रोह का स्वर, असम्बद्ध वर्णन आदि। प्रयोगवाद के प्रमुख हस्ताक्षर हैं – शमशेर बहादुर सिंह, अज्ञेय, मुद्राराक्षस, भारतभूषण अग्रवाल, नरेश, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, कुँवर नारायण, अनन्त कुमारा पाशाण डॉ, धर्मवीर भारती, शकुन्तला, राधाकान्त भारती, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि।

प्रयोगवाद ने वस्तु के अलावा शिल्प के क्षेत्र में भी नवीन प्रयोग किये और भाषा की शक्ति में वृद्धि की। सही बात यह है कि प्रयोगवाद ने हिन्दी कविता की धारा को अवरुद्ध किया और एक प्रकार की सड़ांद पैदा की। यह अत्यन्त अल्पायु रही। प्रयोगवाद लगभग 8 वर्ष तक जीवित रहा। इसके प्रतिक्रियास्वरूप 'नयी कविता' नामक आन्दोलन का जन्म हुआ।

नयी कविता :-

प्रयोगवाद की प्रतिक्रियास्वरूप सन् 1954 के आसपास नयी कविता का आविर्भाव हुआ। इसमें परम्परागत कविता के आगे नये बोधों और शिल्प – विस्तार का अन्वेषण किया गया। नयी कविता हिन्दी कविता के क्षेत्र का एक आन्दोलन विशेष है। इस आन्दोलन के नाम पर एक विशेष चिंतन धारा को नकार दिया था। फलत: हिन्दी कविता समाज से विमुख होने

लगी थी। कविता को समाज के प्रति उन्मुख करने के लिए जो रचनाएं लिखी गयीं, उनको 'नयी कविता' के अन्तर्गत माना जाता है। नवीन कविता, नवीन काव्य शिल्प के माध्यम से नवीन सामाजिक परिवेशष के उपयुक्त जीवन मूल्य प्रस्तुत करती है। नयी कविता के नाम पर अनेक नये कवि आये और कई पुराने कवि प्रयोगवादी भी इस प्रकार की रचनाएँ लिखने लगे। नयी कविता के प्रमुख कवियों के नाम हैं – अज्ञेय, डॉ. रामविलास शर्मा, नागार्जुन, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतभूषण अग्रवाल, मदन वात्सायायन, प्रभाकर माचवे, केदारनाथ सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, डॉ. धर्मवीर भारती, कीर्ति चौधरी, गिरिजा कुमार माथुर, मुद्राराक्षस, रामधारी सिंह 'दिनकर', साहनी, अमित कुमार, विपिन कुमार अग्रवाल, अजित कुमार आदि।

यह भी दृष्टव्य है कि नयी नकल करने की होड़ में हिन्दी में अनेक प्रकार की कविता चल पड़ीं–अकविता, ठोस कविता, परम्परावादी कविता, सकविता, सीमान्त कविता, अस्वीकृत कविता, दुत्कार कविता, कबीरपंथी कविता, ऐबसर्ड कविता, एण्टी कविता आदि। एक समालोचक ने इनके लिए किसिम–किसिम की कविता शब्द का प्रयोग किया है। स्वाभाविक है कि हिन्दी में अनेक कवियों का आविर्भाव हुआ है।

उपसंहारस्वरूप हम कह सकते हैं कि आधुनिक काल में रची गयी हिन्दी कविता का क्षेत्र एवं परिवेश अत्यन्त व्यापक रहे हैं। वह अत्यन्त विविधापूर्ण भी है। इस की अनेक प्रवृत्तियाँ आरम्भ से अन्त तक रही हैं और यथासमय उनमें नयी प्रवृत्तियाँ जुड़ती गयी हैं। आधुनिक काल की खड़ीबोली की कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं –

1. देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति,
2. बौद्धिकता के समावेश की प्रवृत्ति,
3. ज्ञानार्जुन की प्रवृत्ति,
4. काव्य और समाज में निकट सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति,
5. वैयक्तिकता की प्रवृत्ति,
6. नारी – उत्थान की प्रवृत्ति,
7. श्रृंगार – वर्णन में स्थूलता की प्रवृत्ति,
8. विद्रोह की प्रवृत्ति,

9. मानववाद की प्रवृत्ति,
10. नवीन छन्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति,
11. प्रकृति के प्रति आकर्षण की प्रवृत्ति,
12. दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति की प्रवृत्ति,
13. गांधीवाद की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति,
14. पुनर्जागरण की प्रवृत्ति,
15. लोकगीतों की प्रवृत्ति

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

अग्निगर्भ

- महाश्वेता देवी

प्रश्न :-

1. 'अग्निगर्भ' उपन्यास के कथानक पर प्रकाश डालिए।
2. बसाई टूडू (टोरू) का चरित्र -चित्रण कीजिए।
3. काली साँतरा के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
4. 'अग्निगर्भ' उपन्यास में द्रौपदी का चरित्र-चित्रण कीजिए।
5. मातो डोम का चरित्र-चित्रण कीजिए।
6. 'अग्निगर्भ' उपन्यास में व्यक्त देश-काल तथा वातावरण का विवरण दीजिए।

अग्निगर्भ

- महाश्वेता देवी

प्र.1. 'अग्निगर्भ' उपन्यास के कथानक पर प्रकाश डालिए।

रूपरेखा :-

1. प्रारम्भ
2. मातो डोम की काली साँतरा से भेंट
3. काली साँतरा का कसाई टुडू से मिलन
4. बसाई और काली साँतरा के नीच सैद्धान्तिक चर्चा - कटु अनुभव
5. काली साँतरा और बेतुल
6. बसाई की तथाकथित मृत्यु
7. बसाई की सक्रियता
8. बसाई की मृत्यु का पुनः नाटक
9. समापन

1. प्रारम्भ :

मातों डोमनाम का लडका रांगरूट (wrong rout) बन जाता है। वह अपना गाँव छोड चला आता है। वह कभी-कभी अपना गाँव जाता रहता है और औरतों का आकर्षित करने के कपडे भी पहन कर जाता है। वह याने में आकर बसाई टूटू के मरने का समाचार देता है। दाशेगा कुछ सोचने लगता हैं। मातो डोम का पिता सीधा आदमी नहीं है, साथ ही उसका राजनीति में प्रभाव भी है।

मातो डोम काली साँतरा के पास पहुँचता है। काली साँतरा किसी जमाने में बसाई टूडू का सभी था। सन् 1970-76 की कालावधि में बसाई टूडू चार बार मर चुका था। चारों बार काली साँतरा को उसकी शिनाख्त के लिए जाना पडा था। न किसी ने बसाई को मरा हुआ देखा था और न किसी को विश्वास हुआ कि वह सचमुच मर गया।

2. मतोडोम की काली साँतरा से भेंट :

मोतो डोम काली साँतरा को बसाई के मरने का समाचार सुनाता है। काली सांतरा उसे भगा देता है और मुंशी देउको मिसिर समझा-बुझा कर एस.आई. को चरसा के जंगल की ओर भेज देते हैं। बसाई को एस.आई. ने कभी देखा नहीं था। वह बसाई के विवरण के कागज जेब में रखकर बरसात की अँधेरी रात में चरसा के जंगल की ओर चले जाता है। मातो डोम सदा बसाई को कोसता रहता है।

काली साँतरा और एस.आई. मिल जाते हैं। दोनों की सम्मति में बसाई टूडू जीवित हो उठता है। देउ की मिसिर को यह चिन्ता लगी रहती है कि काली साँतरा कहाँ गया। काली साँतरा के साथ वह विभिन्न चालों की कल्पना करके सोचने लगता है कि एस.आई. की पदावनति हो जाएगी। सदर चरसा नदी के पास एक गाँव है। सबेरा होने के पहले मिसिर ने सोच-समझकर कुछ बता देता है।

3. काली साँतरा का बसाई टूडू से मिलन :

काली साँतरा के ऊपर देउ की मिसिर का प्रभाव रहता है। सब बातों पर विचार करने के पश्चात वह लारी में सदर पहुँचता है। वह बेतूल काउरा के घर बडी रात को पहुँचाता है। काली साँतरा और बेतूल बसाई से मिलने के लिए जंगल की ओर चल पडते हैं। सदर पहुँच कर बेतुल ने अपने साले मुकुन्दी से भैंसा लिया और वे भैंसे को आगे करके नदी के सहारे-सहारे चल पडे। बेतुल को विश्वास नहीं हो रहा है कि बसाई चल बसा है।

पल्ताकुडि में पहुँचकर वे दोनों बसाई से मिलते हैं। खाना खाकर बसाई और काली साँतरा एक वृक्ष के नीचे बैठ कर वार्तालाप करते रहते हैं। बसाई काली साँतरा को याद दिलाता कि पार्टी ने तुम्हारा पूरा फायदा उठाकर अब अलग कर दिया है। पार्टीबाजी, राजनीति आदि के समम्बन्धित अनेक विषयों की चर्चा चलती है। समाज में फैली जातिवाद पर चर्चा होती है। नेता इस पर चुप रहते हैं और गरीब उपेक्षित होती है। नेता इस पर चुप रहते हैं और गरीब उपेक्षित रह जाते हैं। बसाई निकम्मा और बेईमान समझकर सारे नेताओं को छोड देता है। बसाई अपने जीवन के कटु अनुभव काली को सुनाता है। बसाई के साथ काली दो दिन ठहरता है।

एक दिन संध्या के बाद काली को लेकर बसाई हाइ वे पर जाता है। दोनों एक पेड के नीचे छाता लगा कर बैठ जाते हैं। साढ़े सात बजे सूयई साउ की लॉशी पर काली को विदा कर के बसाई आ जाता है। लॉरी द्वारा छोडी गई चावल की बोरी बसाई पीठ कर लाद कर गाँव की ओर चलता है। उसकी बगल में छाता रहता है।

4. बसाई और काली साँतरा के बीच सैद्धान्तिक चर्चा-कटु अनुभव :

बसाई और काली साँतरा के दो दिन की भेंट में विविध विषयों पर चर्चा चलती है। बसाई को पचास-साठ सालों के राजनीतिक संघर्ष का, विशेषकर किसान मजदूरों के जमीन्दारों के विरुद्ध चलाये गये संघर्ष का पूर्ण ज्ञान है। काली संतरा काँग्रेसी है। वह नक्सलियों के शत्रु काँग्रेस का सदस्य है। किन्तु बसाई की सच्ची-सच्ची और खरी-खरी बातों को सुन कर वह चुप रह जाता है। बसाई के सेवाभाव, सिद्धान्तों के प्रति अटल रहना, अप्रत्याशित ज्ञान आदि पर वह मुग्ध होता है। वह कहता है - ''बसाई स्वभावत: ईश्वर अथवा साइँस फिक्शन का सर्वज्ञ प्राणी है।''

बिदा होने के कुछ समय पहले बसाई और काली साँतरा के बीच का वार्तालाप बहुत ही रोचक है। बसाई अनेक विषयों का साँतरा पर जादू कर देता है। बसाई बता देता बडे और मडोले किसानों के स्वार्थ की रक्षा के लिए कृषक सभा उपेक्षा नहीं करती। गरीब किसान ही कुली किसानों का बारह आना भाग है और वे ही भूमि-क्रान्ति की प्रधान शक्ति हैं।

''काली बदबू सामंत से तुम क्या कहोगे?''''कहूँगा, बसाई ने नक्सल बनने के लिए पार्टी नहीं छोडी। पार्टी छोडकर भी नक्सल नहीं बना। खेत-मजूर की माँगों को बराबर उपेक्षित होते देख कर बसाई पार्टी छोड गया।''

''क्या कर रहा हूँ मैं, अगर पूछा ?''

''कह दूँगा, पता नहीं। मुझे नहीं बताया।''

''ठीक!''

''एक बात है।''

''क्या ?''

''मुझे तुम जानते हो।''

''हाँ, उस से क्या?''

''जो मैं हूँ, वही रहूँगा।''

''पता है।''

''कभी जरूरत पडने पर काली साँतरा को बतानी होगी।''

काली साँतरा को लॉरी में बैठा कर बसाई गाँव की ओर चला जाता है। बसाई के साथ बहुत दिनों बाद काली साँतरा की यह अन्तिम भेंट है।

5. काली साँतरा और बेतुल :-

काली साँतरा बरसात की रात में चरसा के जंगल में लौट आता है। बेतुल झपट कर उसका हाथ पडक लेता है। दोनों एक पेड के नीचे पन्द्रह मिनट चुपचाप खडे रहते हैं, फिर चले जाते हैं। दोनों को जीवन-रक्षा की चिन्ता थी। एक छोटी-सी कोठरी में ठहर कर भोर के पहले ही वहाँ से सदर के लिए चल पडते हैं।

6. बसाई की तथाकथित मृत्यु :-

बेतुल सो जाता है और काली साँतरा के मन में तरह-तरह के विचार तैरने लगते हैं। उसके ध्यान में बसाई द्वारा की गई जीत-रक्षा की घटनाएँ घूमने लगती हैं। पुलिस और बसाई के बीच के विषयों के बारे में वह वितरा होता रहता है। 1970 में फिटत ऑपरेशन-बनारी में बसाई की तथाकथित पाँचवीं बार मृत्यु के बारे में वह चिन्तन करता रहता है। फिर उसके दिमाग में छापामार लडाई की नीति कौंध आती है। बसाई के बारे में कडी-कडी मन्त्रणाएँ होती हैं। बसाई की लाश की पहचान कर काली साँतरा लौट जाता है। किन्तु बसाई फिर सक्रिय होने का समाचार फैलता है। प्रशासन के सिर पर आसमान टूट गिरता है।

7. बसाई की सक्रियता :

बसाई पुन: सक्रिय हो जाता है। यह समाचार सुनकर सरकारी अफसर, काली साँतरा आदि चकित हो जाते हैं। बसाई की बातें सोचते-सोचते काली कांकडा खोल कर उसके द्वारा किये गये अत्याचारों को याद करता है। वह यह भी याद करता है कि बसाई को पकडकर या मार कर प्रमोशन प्राप्त करने के चक्कर में बहुत से दारोगाओं ने एनकाउण्टर में प्राण खो दिये। पुलिस की कारगुजरी दिखाते हुए उपन्यासकारिणी महाश्वेता देवी लिखती है, ''सबेरे सात से शाम को सात बजे तक दो सौ इक्यावन लोगों ने बसाई की लाश की शिनारन्त की, पर कोई मृतदेह के पास नहीं जाता था। मृत देह पुलिस के पहरे में थी। रात को आठ बजे पुलिस के पहरे में बसाई की लाश का अंतिम संस्कार कर दिया गया।'' मुठभेद में मरनेवाले एस.आई. को मृत्युपर्यन्त वीर चक्र मिला, पत्नी को पुरस्कार स्वरूप मुख्य सडक पर कूलड्रिंककी दूकान प्राप्त हुई।

घायल रामेश्वर को चिकित्सकों ने बचा लिया। पर किसी ने उसके धान के खेत जला दिये थे। काँग्रसियों ने राशन की दूकानें, परमिट आदि अपने नाम स्वीकार करवाया।

8. बसाई की मृत्यु का पुनः नाटक :-

काली साँतरा को एस.पी. के पास जाना पडता है। सब लोग बसाई की तलाश में चल पडते हैं। प्रशासन पार्टी के लडकों की घर-पकड प्रारम्भ करता है। बाकुली की जमींदार सूर्य साउ की चर्चा विस्तृत रूप की जाती है। एक लाश के रूप में बसाई पकडा जाता है। सिपाही उसे एक पेड से बाँधकर छलनी कर देते हैं। लोग बसाई टूडू मारा गया समझते हैं। काली सांतरा बताता है, ''यह बसाई की लाश नहीं है। बसाई की मृत्यु का यह तीसरा नाटक है। काली साँतरा को रात में छुट्टी मिलती है।''

इस घटना (काकु ली की घटना) के बाद काली साँतरा की सोच में अन्तर आता है। अब वह अपने स्वास्थ्य पर ध्यान देने लगता है। अपनी पार्टी में भी अब काली साँतरा का विश्वास नहीं रहता है। प्रशासन काली के प्रति अविश्वास उत्पन्न कर देता है।

सन् 1975 में इमरजेंसी (Emergency) लग जाती है। खेत मजदूरों के प्रति काली साँतरा सदा चिंतित रहता है। सन् 1973 की रिपोर्ट में मन्त्री के वक्तव्य में - कोरी बातें और कोई ठोस बात नहीं।

किसी ज्ञात पर काली गोरादास को थप्पड मारता है। उसका ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है। एस.आई. को बसाई को गैंग्रीन होने की खबर लगती है। शिनाख्त के लिए वह काली को साथ ले जाता है।

बसाई को पुलिस घेर लेती है। बसाई एक दम दुर्बल हो जाता है। उसे आउट पोस्ट लाकर पाकपुर अस्पताल में दाखिल किया जाता है। गेंग्रीन का जहर उसके शरीर भर फैल जाता है। बसाई का जीवन समापप्त होता है। मरने तक बसाई मुँह नहीं खोलता है। डण्ड की एक गोली लगने से गैंग्रीन हुआ था। बसाई की यह चौथी मौत है।

बसाई के बार-बार मरने और जीवित होने के समाचार पर उच्च स्तर पर नाराजी होती है। अन्तत: बसाई जीवित रहने का और सक्रिय रहने का निश्चय होता है। बसाई को काली साँतरा से लडाने के लिए बसाई को जीवित रखना आवश्यक है। सन् 1976 में धान काटने का समय आता है। खेतमजदूरों की समसस्या पर उच्च स्तर पर विचार होने लगता है।

9. समापन :-

सन् 1997 में चुनाव होते हैं। सामंत जागुला जेल से छूट कर चुनाव में लग जाता है। बसाई के भाग जाने का समाचार व्याप्त होता है। काली सोचता है कि मुझे फिर शिनाख्त केलिए जाना पडेगा। काली साँतरा जंगल में एक पेड की जड के सहारे सो जाता है । पुलिस की एक टोली काली की ओर बढ़ती है। धरती की मिट्टी में पुलिस के पैरों की आहट नहीं होती है।

Lesson Writer

ऐनम्पूडि कविता एम.ए.

प्र.2. बसाई टूडू (टोरू) का चरित्र-चित्रण कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. जातिभेद का अपमान
3. विविध अड्डे
4. व्यवहार कुशलता
5. छापामार युद्ध
6. प्रशासन के लिए सिर दर्द तथा संघर्ष
7. आखिरी साँस

1. प्रस्तावना :-

44 वर्ष का बसाई टूडू बिहार निवासी संथाल है। वह एक प्रबुद्ध और जागर रूक नागरिक है। कम्युनिस्‍ पार्टी का वह सक्रिय सदस्य एवं बहुत दिनों तक कार्यकर्ता के रूप में भी रहता है। वह खेत-मजदूरों की न्याय उन्नति के लिए लगातार संघर्ष करता रहता है। नेता लोग गरीबों और अकिंचनों की दीनता के बारे में नहीं सोचते हैं और उनकी भलाई की उनको कोई फिक्र नहीं, यह सब देख-समझकर बसाई पार्टी छोड देता है और अपने विज्ञान के काम करने लगता है। समाज और सरकार समझते हैं कि वह नकसली हो गया है। हिंसा प्रवृत्ति में वह लगा हुआ है। पुलिस उस पर नजर रखती है। पुलिस फर्जी मुठभेडों में उसे पाँच बार मरा हुआ दिखाती है और उसकी लाश की शिनाख्त भी करवाती है। अन्त में बसाई बाहर से बुलाये गये कौटया के विरुद्ध मजदूरों की ओर से संघर्ष करते हुए प्राण खो बैठता है। वह अपने वर्ग के शोषित एवं पीडित लोगों का सच्चा हितैषी है।

बंसाई का जन्मस्थान बाकली है। जन्म लेते ही माता और दूसरे साल पिता चल बसते हैं। कहीं भी उसका घर-द्वार नहीं। बुआ के पास गाँव में छः साल तक वह रहता है। बुआ की मृत्यु के पश्चात वह गोकुल बाबू की कोशिश से राफल मिशन में जाता है। उसके बाद जागुला किसान फ्रंट का वह कार्यकर्ता बनता है। तीस वर्ष तक वह शताधिक गाँवों में घूमता रहता है। परिणामतः बसाई सब जगह ममत्व प्राप्त कर हर घर का आदमी बनता है। किन्तु उसका कोई रक्त सम्बन्धी न था और प्रशासन परेशान था।

माता डोम लडका बसाई टूडू मर जाने का समाचार लाता है। पुलिस के लिए बसाई जीवित है। सब इनस्पेक्टर पुलिस और उसके गवाह काली संतरा की दृषिष्ट में बसाई जीवित है। दोनों की स्मृति में बसाई टूडू उसी रात जीवित हो उठता है। पुलिस का मुंशी देउकी मिसिर बसाई के नाम काँपता है। बसाई अपना समानान्तर सरकार चलाता है और देउ की मिसिर बसाई की परछाई से भी डरता है। बसाई के आसपास भी वह नहहीं जाता है। किन्तु सत्र सरकारों में वह अपना रिजीम (regeme) चलाये रहता है। जिस दिन बसाई जंगल में घुसेगा, उस दिन देउकी मिसिर का सिर बरछी पर नाचेगा। बसाई काली साँतरा को बताता है, ''मैं नक्सल नहीं हूँ तथा वीर पाठक का आदमी हूँ।''

2. जातिभेद का अपमान :-

बसाई जातिभेद के अपमान से आहत होकर विद्रोही बनता है। अपनी बिरादरी की गरीबी देख कर वह अत्यन्त व्यथित होता है। उच्च वर्ग के लोग जाति के नाम पर उसका अपमान करते है, ''तू बसाई सन्ताल है। तेरे समाज के मनुष्य लंगोटी पहनते हैं और अकाल में चूहा-साँप खाते हैं।''

बसाई तथा कथित उच्च वर्ग को जात-पाँत के अभिशाप के लिए दोषी मानता है। ब्राह्मण कायथ खेत-मजदूर नहीं होते। अगर वे भी मजदूरी करते तो खेत-मजदूर समाज में छुआछूत नहीं होते। छूआछूत के नाम पर बसाई आवेश में आ जाता है। बसाई के कारण सामन्त का सम्मान रहता है और वस्तुत: बसाई के कारण ही वे जीवित भी हैं। उसकी आवाज कडक होती है। दाशेगाई के लहजे में वह गरज कर बास वाले से कहता है, ''बस में पसींजर चढ़ाने में कामरेड को कुछ होगा, तो मैं तुम्हारी लहास (लाश) फूँक दूँगा मैं बसाई टूडू हूँ।

बसाई की दृष्टि में सब नेता टेढ़े, हरामी और बेईमान हैं। वह सब को झूठे और निकम्मे समझकर छोड देता है। पार्टी और उसके नेताओं के प्रति अपने कटु अनुभवों को व्यक्त करते हुए बसाई कहता है - ''काली बाबू, मैं खेत का मजदूर हूँ। खेत मजूरों के डक में किसी भी किसान सुभा ने मदद नहीं की। .... कमनिय नाम लेते ही लहु जल उछता है। कलेजे में लहु (रक्त) गरज उठता है .....।''

3. विविध अड्डे :

बसाई के अनेक अड्डे हैं। वह अपने रहस्य प्रदेश और अड्डों का पता काली साँतरा को भी नहीं बताता है, क्यों कि काली बसाई का मित्र होने पर भी वह पुलिस का मुखबिर (informer) है। बसाई बार-बार कहता, ''इन राजनीतिक दलों के व्यवहार से मेरा मन टूट चुका है।''

स्वभावत: बसाई रसिकता प्रेमी है। माझिन की आवाज सब औरतों की तरह उसे मीठी लगती है। बसाई की लडाई का मुख्य मुद्दा किसानों को न्यूनतम वेतन (minimum wage) है। वह स्वीकार करता है कि आजादी की प्राप्ति के पश्चात इस दिशा में कुछ काम हुआ है।

4. व्यवहार कुशलता :

बसाई व्यवहार कुशल है। अपना काम निकालने के लिए अवसर और व्यक्ति का पूरा लाभ उठाने में वह विश्वास करता है। ''काम सीधी तरह ही अथवा टेढ़ी तरह–जिस से काम होगा, वहाँ कानून। जहाँ कानून का अंगूठा जमींधार दिखाएगा, वहाँ उँगली करेंगे । नक्सल मुझे मदद देते हैं, तो मदद लूँगा । दुम दो, तो लूँगा। ''

काली को आन्दोलन के पूर्ण इतिहास का ज्ञान है। बसाई न्यूनतम मजदूरी (minimum wage-एम.डब्ल्यू) का संपूर्ण कानूनी मजदूरी, उनसठ में रिवीजन (Revision), अब सत्तर है। अडसठ (1968) का रिविजन अब भी चल रहा है। ''बसाई पुन: कह देता है,'' काली तुम जैसे लोग जमींदारों के मुर्गे हैं। अच्छे कमनिस हो तुम लोग, जमींदारों से कुछ कह नहीं सकते या तुम जोतदारों का हक ज्यादा समझते हो । कानून पास कराया, पर चालू नहीं किया।

उपन्यास की लेखिका महाश्वेता देवी के शब्दों में – ''बसाई सम्भवत: ईश्वर अथवा साइंस फिक्षन का सर्वज्ञ प्राणी था। '' वह वस्तुत: विवेकशील प्राणी है। आवेश में आकर वह कोई काम करना नहीं चाहता है। वह दृढ़ता के साथ करता है, ''मैं नक्सल नहीं बना, फरंट ने चोट मारी उससे फिर पढ़े–लिखे बाबू लोगों की राह पर अंधे की तरह नहीं जाऊँगा । ''काली बाबू को बसाई स्पष्ट कर देता है,'' जो मैं बताऊँ, सामंत से वही स्पष्ट कर देता है, ''जो मैं बताऊँ, सामंत से वही कहना । एक बात अच्छी तरह समझा देना की – 'पार्टी छोड कर भी नवसल नहीं बना, खेत मजदूरी की माँगों को बराबर उपेक्षित देख कर बसाई पार्टी छोट गया। ''

काली साँतरे की नजर में बसाई एक टोटल पर्सनालिटी है। जो जीवन के प्रत्येक स्तर से शिक्षा और जानकारी लेकर काम में लग कर सब लोग जो नहीं कर पाते, बसाई वह कर सकता है।

5. छापामार युद्ध :

बसाई का छापामार युद्ध विधान है । बसाई का विधान भारतीय स्थिति के अनुसार छापामार युद्ध प्रणाली है । पुलिस के साथ मुठ– भेद में बिसाई की मृत्यु तीन बार बताई जाती है। चौथी मृत्यु के समम्बन्ध में कहा जाता है कि वह गैंगग्रीन बीमारी के कारण मरा था। किन्तु उस के पश्चात भी उसको जीवित दिखा कर एनकाउंटर में मारा गया दिखाया जाता है।

वसाई दयालु एवं भावुक स्वभाव का है। कली जानता है कि बसाई चलते-चलते गौरैया के बच्च्चे को गिरा देख कर घोंसले में रख देगा, प्यार !

बसाई दृढ़ निश्चयी है पाटी के नेताओं से अव्यवस्थित होकर भी काली साँतरा पाटी छोड नहीं पाता, किन्तु बसाई छोड जाता है। काली इस सब कछ घेरे को छोड कर नहीं जा सकता है, किन्तु, बसाई जा सकता है जिस पर काली प्रसन्न होता है।

6. प्रशासन के लिए सिर दर्द तथा संघर्ष :-

बसाई प्रशासन के लिए सिर दर्द होता है। लेकिन कुछ दिनों बाद आर्मी मार्च से वह व्याकुल रहता है, प्रतिदिन वह पीडित रहता है। एक दिन स्वयं जागुला के समीप कुछ गोलमाल उठ खडा सुना जाता है। तब बसाई एक्शन (Action) पर रहता है। प्रशासन के सिर पर आसमान टूट पडता है। स्थानीय मजदूरों द्वारा कटाई करने इनकार करने की स्थिति से सुलझाने के लिए जमींदार बाहर से कटैया बुला लेते है। बसाई उनसे मोर्चा लेने का संपूर्ण प्रबन्ध कर लेता है। जनता को इकट्ठा कर उनके लिए हथियारों का प्रबन्ध करता है।

गैंग्रीन बीमारी से पीडित असहाय और अकेले को पुलिस पकडकर मार डालती है। यह बसाई की चौथी मृत्यु बतायी जाती है। उसके बाद निकटतम पुलिस वाले की ओर इशारा कर थूकता है। मरने तक बसाई फिर एक बार भी मुँह नहीं खोलता है और जग-तरण बेगार लोगों को छोड देता है। जानकर मुँह मोड लेता है और मर जाता है। पहचानत (Identification) परेड सफल होता नहीं। एम.डबल्यू बनाम लरिवन्द में बसाई टोरू सामने आता है। खेत मजदूरों के लिए वह न्यूनतम वेतन (Minimum wages) के लिए संघर्ष करता रहता है।

7. आखिरी साँस :-

लस्कर बाहर से कटैया ले आकर धान कटाना शुरू कर देता है। लस्कर की कपट एवं छलपूर्ण बातों को सुनकर बसाई सब कुछ समझ जाता है। बसाई मजदूरों को भडका-उकसा कर कटैयों को पिटवाता है। धक्का-मुक्की में आग के कौडे में धान गिरते जाते हैं। बेहोशी में पागल बसाई कहता है - ''जलने दो सारा'' जलते हुए धान के पौधों का गुच्छा वह धान के ढ़ेरे में फेंक देता है। चारों ओर धुआँ फैल जाता है।

लस्कर के घर से पन्द्रह युवक बन्दूकें, छुरे और गुप्तियाँ लेकर निकल आते हैं। लस्कर के आदेश पर वे युवक हथियारों के साथ लपक पडते है। बसाई दोनों हाथ फैला कर लडखडाता रहता है। अन्त में चक्कर खा कर गिर जाता है। बसाई का घर बिच्छुकाटी का जंगल है।

बसाई वीर और योद्धा है। वह अपने उद्देश्य तथा अधिकार के लिए लडते हुए मारा जाता है।

Lesson Writer

ऐनम्पूडि कविता एम.ए.

प्र.3. काली साँतरा के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. ईमानदारी
3. बसाई का पुराना साथी
4. आदर्शवादी
5. बसाई से परिचय
6. अन्तर्द्वन्द्व
7. सरल हृदयी
8. वद्धावस्था एवं जीवन की संध्या
9. प्राण-पखेरु

1. प्रस्तावना :-

काली साँतरा परिस्थितियों का दास है। वह घुटन एवं विवशतापूर्ण जीवन बिताता रहता है। वह कम्युनिस्ट पार्टी का सक्रिय सदस्य और बसाई टूडू का पुराना साथी है। पार्टी के नेताओं की निष्क्रियता से ऊबकर बसाई पार्टी त्याग कर गाँवों में किसान मजदूरों के बीच काम करने लगता है। काली साँतरा पार्टी छोड न सकता है। वह पुलिस का इनफारमर बन जाता है। पुलिस की ओर से उसे बसाई की खोज खबर लानी पडती है। फर्जीमुठभेड में बसाई के मारे जाने की खबर आती है तो लाश की शिनाख्त पर साँतरा को जाना पडता है। इसी घन्धे में उसका सारा जीवन बीत जाता है। उसकी अवस्था 61 वर्ष तक पहुँचती है। वह एक दुबला-पतला व्यक्ति है।

2. ईमानदारी :

काली साँतरा ईमानदार है। कम्युनिस्ट पार्टी का वह पुराना सदस्य है। उपनगर केन्द्रित कर्मक्षेत्र उसका चुनाव प्रान्त है। ईमानदारी के कारण समाज में उसका अच्छा आदर रहता है। किन्तु उसके परिवारी जन उसे मूर्ख समझते हैं। आर्थिक संकट के कारण वह अपनी आँख के मोतियाबिन्द का आपरेशन करा न पाता। एक आँख का आपरेशन तो वह कलकत्ता में करवा लेता है। वार्तानामक साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादन भी वह करता है। किसान आन्दोलन, समाज-सेवा आदि विभिन्न प्रकार

के कार्यक्रमों में वह भाग लेता है। वह स्कूल कमेटी की मीटिंग में जाता है और शहीद-दिवस के अनुष्ठान में भाग लेता है। फूटे बर्तन में पानी भरने की तरह बेकारी और गरीबी के अनुभवों से वह खिन्न रह जाता है। पार्टी साँतरा का सच्चा उपयोग कर लेती है।

3. बसाई का पुराना साथी :

बसाई टूडू का काली साँतरा के चरित्र पर गहरा प्रभाव है। दोनों ने किसान आंदोलन पर एक साथ काम किया था। सन् 1970 और 1976 के मध्य काल में बसाई की मृत्यु चार बार हो चुकी थी। कलकत्ता कार्यालय के निर्देशानुसार बसाई की लाश की शिनाख्त के लिए चारों बार काली को ही जाना पडता है।

मोती डोम के द्वारा काली को पता चलता है कि बसाई की मृत्यु चरसा के जंगल में हुई है। सब कुछ सोच-विचार कर काली साँतरा बसाई के पास जाने का निर्णय कर लेता है। बार-बार पुलिस के कहने पर वह जाता है। वह बाबा तारकनाथ लिखी हुई लॉरी पर बैठ जाता है। उसे सादर जाना था। उस के मन में भारी अन्तर्द्वन्द्व मचलने लगता है - ''इकसठ साल की उम्र में मोतियाबिन्द की आँखें लेकर टेंट में सात रुपये और मन में सारी अशान्ति लिए, पुत्र के पास भोजन न मिलने का दु:ख मन में लिए, हृदय में अपमानित होने की ज्वाला लिए ..... '' आदि-आदि से वह उद्वेलित होता रहता है। जाति-भेद और छूत-अछूत की मौलिक समरया का समाधान ही प्राप्त नहीं होता, तो क्रान्ति और समाजवाद की बात बहुत दूर स्वप्न की है।

काली साँतरा के मन में लाश की शिनाख्त करने की बातें ध्यान में आती हैं। वह आँखों मूँद लेता है।

4. आदर्शवादी :

कम्युनिस्ट व्यवस्था में व्यक्तिगत संपत्ति का रखना निषिद्ध है। स्वभाव तथा काली साँतरा आदर्शवादी होने के कारण वह अपनी सारी सम्पत्ति मजदूरों को देता है। 1943 में पार्टी में शामिल होने के समय पिता की दी हुई तीस बीघा जमीन वह मजदूरों में बाँटे देता है।

5. बसाई से परिचय :

बसाई के साथ काली साँतरा का परिचय सन् 1945 में वर्घमान हाट गोविन्दपुर कॉनफरेन्स में होता है। जंगल में बसाई की बातों में अनेक प्रकार की ज्ञान भरी बातें सुनकर काली साँतरा आश्चर्य चकित होता है। बसाी की रणनीति पर वह चकित होता है। फलत: बाघ और सिंहों को चौकस होना पडता है।

काली साँतरा बहुत दिनों तक बसाई के साथ रहता है। उसे प्राय: बसाई की पुरानी बातें, उसके पुराने काम आदि की याद आती रहती है। उसे बसाई के दयालु स्वभाव की याद आती रहती है। कुछ समय बाद काली, बसाई के संसर्ग से अलग हो जाता है। बसाई के आतंकवादी विचारों पर काली प्रसन्न रहता है।

6. अन्तर्द्वन्द्व :

जितनी भी बार बसाई के मारे जाने या मरने समाचार आता है, उसकी लाश की शिनाख्त के लिए काली साँतरा को ही जाना पडता है। यह काम उसकी इच्छा के विरुद्ध होने पर भी जाना ही पडता है। इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व में काली को समय बिताना पडता है। बसाई की पाँचवी बार मृत्यु के समाचार पर भी जाना पडता है। उस के न जाने पर भी पुलिस उसे अवश्य ले जायेगी। बसाई हेमिंग्वे का नायक नहीं। वह गैंग्रीन में मृत्यु की घाट पर पहुँचता है। काली को अवश्य जाना ही पडता है।

7. सरल हृदयी :

काली साँतरा सरल व्यक्ति है। टेढ़ापन, बेईमानी, हरामीपन आदि वह नहीं जानता वह सच्चा कम्युनिस्ट है। पार्टी और मजरूरों के प्रति वह बवादार रहता है। अपने अखबार के सम्पादक जीवन को वह व्यर्थ समझता है। पार्टी इमेज के लिए वह सदा सोचता और व्यवहार करता रहता है। पार्ट के नियमों के अनुसार चलने के परिणामस्वरूप पत्नी-पुत्र परिवार के छत के नीचे रहते हुए भी दूर हो जाते हैं। होठों के कोने लटक जाते हैं और चेहरे पर झुर्रियाँ पड जाती हैं। सारी आशाएँ टूट जाती हैं और मन का संताप हृदय में दबाकर रहना पडता है। बंगाल के अकाल जैसी घटनाओं की याद करके वह काँप उठता है। बसाई पर वह सहानुभूति एवं आदर प्रकट करता है।

8. वृद्धावस्था एवं जीवन की संध्या :

काली साँतरा का संध्या जीवन दुर्भर हो उठता है। उस से लाभान्वित होने वाले उसे पागल समझते हैं। घर में और बाहर उसका आदर नहीं रहता। उसे उदास होकर रहना पडता है। वह अपने स्वास्थ्य के प्रति चिन्तित रहता है और जीवन के प्रति उदास रहता है। जिला-समाचार सुन कर वह व्यथित होता रहता है।

काली साँतरा दिन-ब-दिन मरता जाता है। वह मन-ही-मन मृतप्राय होकर जीवित रहता है। उसे सर्वथा मन में मैला और गंदा लगता है। वह गंगदी स्नान से नहीं छूटती। प्रजातन्त्र दिवस पर काली को हाकिम के पास बैठने का निमन्त्रण मिलता है। बसाई की शिनाख्त के समय काली साँतरा का मन प्राय: विद्रोह-सा करता हुआ दिखाई देता है। अपनी इच्छा के विरुद्ध काम करना पडता है।

प्रशासन काली साँतरा के इमेज का अच्छा आदर करता है। उसे कोई नक्सली कहता है, कोई गुट नक्सलवादी कहता है, कोई गुप्त नक्सलवादी कहता है और कोई नक्सल के सहयोगी कहता है। किन्तु सरकार उसे न गिरफ्तार करती है या न एनकाउण्टर में मारता है। यह उसकी प्रशासन-नीति का एक अंग है। परिणामत: पार्टी में काली के प्रति घोर अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। आखिर पुलिस काली को एक दिन अपने साथ ले जाती है।

9. प्राण पखेरु :-

काली का दिमाग वस्तुत: बैठ जाता है और अपने शरीर की सुधि बहुत कम रह जाती है। दिमाग और शरीर का सम्बन्ध टूट जाता है। उसका शरीर ढ़ीला होने लगता है और उसकी साँस रुक जाती है।

Lesson Writer

ऐनम्पूडि कविता एम.ए.

प्र. 4. 'अग्निगर्भ' उपन्यास में द्रौपदी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. आपरेशन बाकुली
3. बहुत दिनों तक गायब
4. अंधकारमय जीवन
5. दमन क्रिया
6. गिरफ्तारी
7. क्षत-विक्षत तथा अपमान
8. मर्दानी द्रौपदी शहीद

1. प्रस्तावना :-

द्रौपदी एक संथाल मांझिन महिला है। बसाई टूडू की सहयोगिनी होने के कारण पुलिस की आँखों की वह किरकिरी है। अन्त में पुलिस की यन्त्रणआएँ सहती हुई संसार से वह बिदा होती है। उस के बारे में लेखिका कहती है - ''थोडा भारी हँसी से उछलता गया। काली ने चौंक कर पीछे देखा। रानी की भंगिमा में एक संथाल स्त्री खडी है। बयस होगी छब्बीस बरस। बहुत काली, बहुत असभ्य, बहुत सुन्दरी। हाँ देखो काली बाबू लडकी द्रौपदी है। द्रौपदी माझिन।''

उपन्यास लेखिका महाश्वेता देवी के शब्दों में द्रौपदी का परिचय है - द्रौपदी 27 वर्षीय माझिन युवती थी। पति का नाम दूलन (माझी) था। वह चिरायन गाँव की निवासी थी। उसके कंधे पर गोली की चोट का निशान था। जीवित या मृत बता देने पर और जीवित अवस्था में गिरफ्तारी में सहायता देने पर एक सौ रुपये इनाम मिलेगा-यानी वह-इनामी अपराधिन मानी जाती थी।

2. आपरेशन बाकुली :

द्रौपदी अपने पति के सारा ठेके पर काम करती है। सन 1971 ई. में प्रसिद्ध ऑपरेशन बाकुली में तीन गाँव घेर कर बुरी तरह मशीनगन किये जाते हैं। उस समय द्रौपदी और दूलन मरे हुए का बहाना लिये पडे रहते हैं। उस आपरेशन में वस्तुत: ये दोनों ही प्रमुख अपराधी हैं। सूर्य साऊ और उसके बेटे का खून, सूखे के समय ऊँची जाति का कुआँ आदि के दखल करने में ये ही प्रमुख हैं। उसी ऑपरेशन में द्रौपदी के कंधे में गोली लगी है।

ऑपरेशन बाकुली की लाशों में इन दोनों की लाशों की गिनती भी होती है। किन्तु सबेरे लाशों की गिनती पुन: करने पर द्रौपदी और दूलन की लाशें गायब हो जाने के कारण आपरेशन के आर्कीटेक्ट अर्जुनसिंह को तत्काल ब्लड शुगर की बीमारी हो गई थी।

3. बहुत दिनों तक गायब :

द्रौपदी और दूलन मानव विकास की आदिम अवस्था में रहते हुए बहुत दिनों तक गायब रहते हैं। इनकी तलाश में पश्चिमी बंगाल के अनेक संथालों को गिरफ्तार और परेशान किया जाता है। इस बात पर द्रौपदी खिल-खिलाकर हँस पडती है। वह और उसका पति आठ रुपये कमा लेते हैं। पुलिस उसकी तलाश में रहती है। किन्तु वह क्षण भर में गायब हो जाती है। वह हठी स्वभाव की है। पुलिस की गतिविधियों के बारे में पूरी वह जानकारी रखती है।

4. अन्धकारमय जीवन :

उपन्यास की लेखिका महाश्वेता देवी ने एक पृथक एवं स्वतन्त्र अध्याय के रूप में द्रौपदी का विस्तारपूर्ण विवरण दिया है। पुलिस की नजरों में वह एक खतरनाक औरत है। उसका पूरा परिचय पुलिस वालों के अनुसार - 'नाम द्रौपदी, उम्र सत्तीस, पति दूलन माछी (निहित) निवास चिरायक थाना बाँकडा झाड, कंधे पर गोली की चोट का निशान, जीवित या मृत पता देने पर और जीवित अवस्था में गिरफ्तारी में सहायता देने पर एक सौ रुपया इनाम।'

दूलन और द्रौपदी बहुत दिनों तक अंधकारमय जीवन बिताते हैं। द्रौपदी की गिरफ्तारी के प्रयास में पुलीस लगी रहती है। धोती में भात बाँधे, द्रौपदी धीरे-धीरे चलती रहती है। चलते-चलते वह सिर के बालों में वह उँगली फिर कर जुएँ निकाल कर मारती रहती है और सोचती रहती है कि थोडा-सा मिट्टी का तेल मिल जाए तो सिर पर लगाने से जुएँ खत्म हो जाते। उसके बाद थोडे से मोड पर चक्कर लगाने रहते हैं। पानी में मिट्टी के तेल की गंध पाकर वे सूँधते-सूँधते चले जायेंगे।

कोई व्यक्ति 'द्रौपदी!' नाम से आवाज देता है तो वह कुछ बोलती नहीं, अनजान सी रहती है।

5. दमन क्रिया :

द्रौपदी पहले से ही संशय करती रहती है। अब वह निश्चय कर लेती है किसी भी प्रकार उसकी गिरफ्तारी का प्रबन्ध हो रहा है। अपने नाम के इनाम की घोषणा का कागज वह आजल पंचायत आफिस में देखती है। बाहर आकर टूडू की पत्नी कहती है, ''तू अब न आना। टूडू ने बताया है कि यह साहब फिर आया है। तुझे पकडने पर गाँव-बस्ती ..... सो सभी ने हरामीपन किया है। एक

चतुर और दूरदर्शी व्यक्ति भाँति द्रौपदी कहती है - ''घर जा। पता नहीं क्या होगा। मैं पकडी जाऊँ, तो तुम पहचानना मत।''

बसाई की पत्नी कहती है, ''तू भाग नहीं सकती।'' द्रौपदी मृत्यु के नाम पर न डर कर कहती है, ''ना कितनी बार माँगूँगी बता। पकड ही लेंगे तो क्या करेंगे! एन काउंटर कर देंगे। ..... मैं किसी का नाम नहीं बताऊँगी।''

द्रौपदी दमन क्रिया के बारे में पूरी जानकारी रखती है और दमन क्रिया का सामना करने का विधान भी वह जानती है। दमन क्रिया में वह अपने तन और मन अर्पण करने के लिए भी तैयार रहती है। शहीदों की भाँति मृत्यु को गले लगाने से एवं विविध शारीरिक तथा मानसिक यन्त्रणाएँ सहने के लिए वह सदा तैयार रहती है। उसका यह भी संकल्प है, किसी भी हालत में वह अपने साथी का नाम नहीं बताएगी। सब लोग उसे माइजन के नाम से पुकारते हैं।

6. गिरफ्तारी :

द्रौपदी अपने काम का प्रत्येक पक्ष भली भाँति निर्वाह करती है। मोटर अड्डे के पास वह बीडी पीने के बहाने बैठी रहती है और पुलिस की तैयारी के बारे में वह पूरा समाचार प्राप्त कर लेती है। पुलिस की निगाह से बच कर वह जंगल में जाती है।

द्रौपदी पुलिस के घेरे से तो बच, जाती है। किन्तु गाँववालों के घेरे से बच न पाती है। गाँवले पुलिस को उसका समाचार पहुँचाते हैं। फलत: द्रौपदी पुलिस के फंदे में आ जाती है। उसे कैंप में ले जाया जाता है। उसके दोनें हाथ दो खूँटों से और दोनों पैर दो खूँटो से बाँध दिये जाते हैं। उसकी योनि से रक्त-स्राव होने लगता है। शर्म के कारण वह आँखें नीचे कर लेती है और उसकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। उसके दोनों स्तन क्षत-विक्षत किये जाते हैं और वृन्त छिन्न-भिन्न।

वह बेहोश होती है। मरी हुई समझ कर उसे फें क दिया जाता है। एक संत ही पहरे पर रहता है। द्रौपदी को इधर-उधर उछाल कर कई बार जमीन पर फें क दिया जाता है। फिर लाकर सूखी घास पर डाल दिया जाता है।

7. क्षत-विक्षत तथा अपमान :-

द्रौपदी माझिन को बडे साहब के पास तम्बू में लाने के लिए कहा जाता है। संतरी उसकी ओर पानी का लोटा बढ़ाता है तो द्रौपदी उसे उलट देती है। संतरी समझता है कि वह पागल हो गई है। द्रौपदी बडे साहब के आगे आकर खडी हो जाती है -नंगी । ऊरु और योनिकेशों में रक्त के धब्बे दिखाई देते हैं और दोनों स्तन घायल किये हुए हैं।

''यह क्या ? उन्होंने डाँटा ! '' बडा साहब पूछता है।

द्रौपदी और पास चली जाती है। वह हँस कर पुन: कहता है, ''तेरी तलाश का मानुस, द्रौपदी माझिन ठीक कर लाने को कहा था। सो किस तरह ठीक किया है, देखेगा नहीं!''

इस की धोती कहाँ है? धोती ?''बडा साहब संतरी से पूछता है।''

''पहन नहीं रही है, सर! फाड डाली है!'' संतरी जवाब देता है।

8. मर्दानी द्रौपदी शहीद :

द्रौपदी का काला शरीर और समीप आता है। द्रौपदी दुबोध्य है, फौज आकसर के निकट सवह एक दम दुर्बोध्य हँसी से काँपती है। हँसते समय उसके क्षत ओठों से खून बहता है और वह खून हथेली से पोंछ कर द्रौपदी कलकल की आवाज लगाने की-सी भीषण, आकाश-भेदी, तीश्वी आवाज में बोलती है - ''धोती, क्या होगी धोती? नंगा कर सकता है, कपडे क्यों पहनाएगा? तू मरद है?''

चारों ओर देखकर द्रौपदी खून से सने थूक को थूकने के लिए फौजी अफसर की सफेद बुर्श चुन लेती है और उस पर थूक कर कहती है, ''यहाँ कोई आदमी नहीं है, जो शर्म करूँ । धोती मुझे पहनाने को मत देना! और क्या करेगा? लेकर, ले काउंटर! काउंटर पर ....''

द्रौपदी दोनों मर्दित स्तनों से फौज के अधिकारी रहती है और वह पहला अफसर निरस्त्र टार्गेट के सामने खडे रहने में डर रहा है; बहुत डर रहा है।

इस प्रकार वीर मर्दानी द्रौपदी शहीद हो जाती है।

Lesson Writer

ऐनम्पूडि कविता एम.ए.

प्र.5. मातो डोम का चरित्र-चित्रण कीजिए।

मातो डोम निम्न जाति का एक किशोर है। वह रतन डोम का पुत्र है। रतन नाच-गान के द्वारा अपनी जीविका का अर्जन करता रहता है। लोगों की धारणा है कि वह हजार ओट कंट्रोल करता हैं।

रतन अपराधी किस्म का व्यक्ति है। राजनीति में प्रवेश करके वह अपना विशिष्ट स्थान बना लेता है। उसको दारोगा जेल में बन्द करना चाहता है, किन्तु उसके विचारों में परिवर्तन होता है। उसका ओर कंट्रोल सुनकर एस.आई चुप हो जाते हैं। अत: रतन डोम जेल की कोठरी में बन्द नहीं किया जाता।

एक प्रकार से मातो डोम उपन्यास का प्रणेता कहा जा सकता है। बसाई के मारे जाने का समाचार वह थाने पहुँचाता रहता है और थाने में बसाई के विरुद्ध सूत्रपात होता है। यह विधान अन्त तक चलता रहता है। बसाई की मृत्यु होने का समाचार बताता जाता है। उपन्यास की लेखिका महाश्वेता देवी के शब्दों में - ''खबर लाया था, एक लडका, मातो डोम। रंगरूट बनने के बाद से लडका गाँव हुआ था। बीच-बीच में वह गाँव जाता और बॉबी छपी बनियान और रंगीन छींट की लुंगी दिखा डोमिनियों के लुभाकर चल आता।''

मातो डोम बात चीत में चतुर है। अपने को फँसते देख कर झट से वह बात बदल देता है और किसी कथन के प्रति वह अपने को प्रतिबद्ध नहीं होने देता। वह एक घुटा हुआ किशोर व्यक्ति है। झूठ-सच को बदलना वह अच्छा जानता है। वह जोर के साथ बसाई टूडू के मरने की बात बता देता है। थाने में - ''मर गया? तू ने देखा ?'' जैसे प्रशनों का जवाब बातों- बातों में वह उडा देता है और कहता है - ''मैं ने तो देखा नहीं, बाप ने बताया।'' देखने के सन्दर्भ में वह अपने पिता का नाम तो लेता है, परन्तु स्वयं को देखने की बातसे एकदम पल्ला झाड लेता है। फिर पूछताछ होने पर वह अपनी माँ का नाम लेता है, ''ना! बाप ने मुझे नहीं देखा। बात नहीं हुई। माँ मेले मे आई थी। माँ कहती थी, मेरे बाप ने देखा। वह मर गया। बसाई मर गया। मैंने पूछा कहाँ ? वह बोली चरसा के जंगल में।''

सिनेमा के आगे चिनिया बादाम बेचना मातो डोम की रोजी है। जी भर कर सिनेमा देखना, छककर शराब पीना, गले में रूमाल बाँधकर शहर में घूमना आदि उसकी पहुँच के बाहर की बात है। उसका कोई अरमान सफल नहीं होता। एश की जिन्दगी बताने में वह सर्वथा असमर्थ है।

मतोडोम तो बसाई का समाचार पुलिस वालों को बता देता है। किन्तु उसे बसाई के बदला लेने की शंका रहती है। बसाई उसे बहुत कडी सजा दे सकता है। इस खतरे से बचने के लिए वह तरकीब सोचने लगता है। बसाई के खास आदमी और उसके पुराने साथी काली साँतरा को वह समाचार

पहुँचाता है, ताकि बसाई भाग कर कहीं बसेरा ले ले। काली साँतरा के पास पहुँच कर वह बता देता है, ''थाने में बताया, तो किसी को विश्वास नहीं हुआ, इस से आप को बताता हूँ – बसाई मर गया।''

साँतरा प्रश्न करता है, ''तुम यहाँ क्यों आये? उत्तर में मातो डोम बताता है चरसा के जंगल में आप उसकी लाश पहचानें।'' साँतरा उसे भगा देता है। इस से मातो डोम का अन्तर्द्वन्द्व उभरता है, ''आज का दिन भी बरबाद हुआ। ऐसी खबर, न उस से होश में आए थाने के बाबू लोग और न चौंका काली साँतरा ..... माँ ने शराब के नशे में कहा था, कहा था मन के दु:ख में। ''

मातो डोम के अनुसार चरसा में आनेवाली बाढ़ गाँववालों के प्रति सरकार और नेता बेरुख हैं। अकाल में भी कोई अधिकारी या नेता गाँव की और आँख नहीं फेरता। गाँव के आदमियों को अंगूठा दिखा कर खेत काटनेवाले आकर जोतदार के घान काटकर मजदूरी लेते हैं। अब उसके ध्यान में अपनी माँ आती है, मातो की माँ मेले में बाँस की टोकरियाँ बेचकर शराब पीती है।

मोतो डोम के सिर में चक्कर आने लगता है मानो अब शनि उसके सिर पर नाच रहा है। डर से काँप कर वह सिनेमा हाउस की राह पकडता है।

इसके बाद मातो डोम प्रकट नहीं होता हैं।

Lesson Writer

ऐनम्पूडि कविता एम.ए.

प्र.6. 'अग्निगर्भ' उपन्यास में व्यक्त देश-काल तथा वातावरण का विवरण दीजिए।

'अग्निगर्भ' उपन्यास में तत्कालीन देश–काल तथा वातावरण विवरण समग्र रूप में दिया गया है। उपन्यास में इन सब बातों का यथार्थ एवं सजीव वर्णन किया गया है।

1. भौगोलिक विवरण :

'अग्निगर्भ' उपन्यास बिहार के दार्जिलिंग जिले के बहुत से गाँवों की चर्चा आती है। उन गाँवों के रास्ते जंगलों से होकर हैं। वे जंगल वहाँ के निवासियों के जीवनाधार है। वहाँ बहनेवाली नदियाँ उनका सहारा होती हैं। इन सारे विषयों का लेखिका महाश्वेता देवी ने यथातथ्य चित्रण किया है।

मातोडोम बेतुल टुडू की मृत्यु होने समाचार लाता है। इसलिए एस.आई. का वहाँ जाना अनिवार्य होता है। निर्धारित स्थान पर पहुँचने के लिए चरसा के जंगल को पार करना अनिवार्य है। बरसात का मौसम होने से उसे संकोच होता है।

उस जंगल का वर्णन करते हुए लेखिका कहती हैं, ''चरसा के जंगल का ध्यान कर उसका कलेजा काँप उठता था। पेडों के बीच में आँखें चलती है। चरसा में साल–पियासाल–केंदू–आँवला–बहडा का घना जंगल है। बरसात आने पर चरसा नदी किनारों तक लग कर बहती है । खोपाई और ताड के पेडों के बीच–बीच में मटमैले पानी का स्रोत है। गाँव से डेढ़ मील चल कर चरसा नदी पतली हो जाती है। नदी के किनारे होनेवाली पर्वत मालाओं की कन्दराओं में से केकडे के गुच्छे नदी की ओर लटकाये हुए झुके होते हैं। चरसा के सूख जाने पर नैरंजन रहती।''

2. नक्सली आन्दोलन की जन्मधात्री :-

श्रमकों तथा कृषकों की वेदना सरकार के कानों तक नहीं पहुँचती क्यों कि सरकार जमीन्दारों और महाजनों की समर्थक है। न्यूनतम मजदूरी के आन्दोलन के फलस्वरूप नक्सलवादी गाँव में नक्सली आन्दोलन के फलस्वरूप नक्सलवादी गाँव में मजदूरी का कुछ सुधार हो सका। सब को आधे घण्टे का विश्राम भी मिलने लगा। मजदूरी के सुधार का निरीक्षण (Supervision) करने के लिए प्राय: सोलह इन्सपेक्टरों की नियुक्ति की जाती है। किन्तु कोई भी निरीक्षक कलकत्ता छोडकर बाहर नहीं गया। फलत: मजदूर पहले की तरह ही आठ आने, एक रुपया, दो रुपये पाते रहे। उनकी मुसीबतों में कोई सुधार नहीं हुआ।

3. रहन-सहन :-

चरसा आदि गाँवों के लोग अधिकांश खेत-मजदूर हैं और हैं बहुत गरीब। प्राय: वे खेत-मजूरी के अलावा चटाई आदि बुनकर पेट भरते थे। गरीबी में भी के अंधेरी कोठरियों को साफ रखते थे। वे लोग संथाल होते हुए भी साफ सुधरे रहते हैं। चटाई पर सोते हैं। हाण्डी लिपी-पुती साफ रखते हैं। चबूतरे लिपे-पुते होते हैं ।

मछली उनका प्रधान भोजन है और वे चिडियों को मार कर उनका माँस भी भूनकर खाते हैं।? दाल और डेंगला पोस्त के साग के साथ वे खाना खाते हैं। वे चाय पीने के अभ्यस्त हैं।

4. अन्धविश्वास :-

चरसा में मधई डोम का एक गुणी व्यक्ति रहता है। उसे जमीन के अन्दर पाताल के पानी का पता रहता है। रात-भर उपवास के अन्तर वह स्नान कर धुला कपडा पहनता है। पलाशा के पत्ते पर वह चावल, घी और चीनी लेता है। फिर वह मन्त्र पढ़ता चलता रहता है। तत्पश्चात वह जहाँ रूक कर अंजली खोल कर चावल छिडकता हैं, डायनामाइट से उडा देने पर पानी निकल पडता है और कुआँ बन जाता है। लोग विश्वास करते हैं कि बडाम देवी ने नदी को रोक दिया है, नहीं तो पूरा गाँव बाढ़ में डूब जायेगा मधई डोम को जनता भगीरथ मानते हैं।

5. जाति-पाँत की समस्या :-

जाति-पाँत की, सवर्ण-शूद्र की और ऊँच-नीच की समस्या विशद रूप से चलती रहती है। मातो डोम को देवकी देवकी मिसिर याने से भगा देता है। मातो डोम के शब्दों में देवकी मिसिर का दुर्व्यवहार इस प्रकार है - ''बस की कण्डक्ट्री मिल जाये तो मन में फिर भी सान्वता रहे। लेकिन हुई नहीं। गर्मी में मिसिर बाबू उस से घृणा करते हैं।'' सवर्ण महाजन गाँववालों को अपने कुएँ से पानी नहीं भरने देता है और लोग प्यास से तडपने लगते हैं। पानी की यह समस्या चरसा में हर साल उत्पन्न होती है। लोग मधई डोम के पास आकर, ''ठाकुर पानी पिलाओ! कहते हैं। हर बार कुआँ खोदने के पहले सन्तोष पुजारी मधई के पास आता है और उन दोनों के बीच वार्तालाप इस प्रकार चलता है -''

''क्यों ठाकुर ?''

''पानी का पता लगा दो।''

''मधई ने पूछा कुआँ कहाँ बनेगा ?''

''वह तो तुम बताओगे भाई! ''

''कुआँ, कुएँ से हमें पानी मिलेगा?''

''क्या तुम्हें पानी नहीं मिलता ?''

मधई इस बात का समाधान दे न पाता है। किन्तु, मधई का लडका धूरा कहता है, ''हमें पानी नहीं मिलता, आप लोग पानी देते नहीं, फिर बेकार की खोज का काम क्यों किया जाए, ठाकुर!''

सन्तोष पुजारी के नेत्रों में लाली छा जाती है। वह कहता है, ''पानी नहीं देते! किसे पानी नहीं देते?''

''डोम, चमार, चंडालों को पानी नहीं देते।''

''तू पानी के बिना जिन्दा है घूरा?''

घूरा गुस्से में भर कर रूखी आवाज में कह देता है, ''ने चरसा की छाती फोड कर सोता निकालते हैं । उस में रात भर पानी जमा होता है। उस पानी का हमें पता है। पंचायती का सबका कुआँ होता है। लेकिन उससे हमें पानी नहीं मिलता। दिन में तुम लोग गाय-भैंसों को नहलाते हो, वहाँ से रखवाला लाठी लेकर भगा देता है। रात के समय जाने पर बाल्टी की आवाज सुनकर तुम लोग कुत्ते लगा देते हो। पानी के लिए, रात के समय चोरी करनी पडती है। फिर भी सारे कुएँ मेरे बाप ने ही दिखाये थे। उसके बने थे। ''

''इसीलिए तू इतना गरम हो रहा है।''

लेकिन मधई अपने पुत्र को डाँट कर चुप कर देता है। संतोष पुजारी को वह कडक आवाज में कहता है, ''धूरा झूठ नहीं कहता । पानी तुम नहीं देते, दोगे भी नहीं। फिर उस पर बात क्यों बढ़ायी जाये? ''

6. राजनीति और प्रशासन :-

राजनीतिक नेता जनता को अनेक प्रकार के आश्वासन देते हैं और विविध रीतियों से बहलाते हैं, किन्तु वे जमीन्दारों के हितैषी बने रहते हैं। पुलिस श्रमिकों और कृषकों को दबाए रहती है और प्रताडित करती है। पुलिस, प्रशासक और राजनीतिक नेता जनता का शोषण करते हैं। इस त्रिकोण षडयंत्र को अग्निगर्भ उपन्यास में चरसा गाँव को केन्द्र बना कर बताया गया है। विरोध करने पर और कानून की बात करने पर चरसा, और चरसा के निवासी नेस्तनाबूद कर दिये जाते हैं। उनके नेता बसाई

की हत्या कर दी जाती है। पुरस्कार स्वरूप पुलिस-क्लब को दस हजार रुपये प्राप्त होते हैं। ये सारे विषय 'अग्निगर्भ' उपन्यास में बहुत ही कुशलता के साथ चित्रित किया गया है।

उपन्यास के प्रारम्भ में ही विवरण प्राप्त होता है - पुलिस संकट को कन्नी काटते हैं, थाने के मुंशी शातिर नहीं और प्रशासक दोहरी नीति चलते हैं। उपन्यास के समापन के समय बताया जाता है - पुलिसलोग हत्या के मामले को एनकाउंटर बताकर वाहवाही लूटते हैं। बसाई को मरने का समाचार पाकर एस आई शान्त रहता है। साँतरा को शिनाख्त का काम लेना पडता है।

काली साँतरा कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य है। वह जिला वार्ता का सम्पादक है। फिर भी वह अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु प्रशासन के इशारों पर नाचने को विवश है। बसाई की मृत्यु का समाचार पाकर वह भाग जाता है। वह समझ जाता है कि चारों और वह फँस रहा है।

दलित वर्ग का अधिकारी आने पर दलितों की दशा में परिवर्तन आता है। दलित वर्ग की सुविधाओं का प्रयत्न किया जाता है। जमीन्दार और प्रशासक मिलकर सरकारी सहायता का लाभ उठाते रहते हैं। पुलिस की सहायता से जमीन्दार श्रमिकों का शोषण करते हैं।

उपन्यास में जमीन्दार, प्रशासक और राजनेताओं का सांठ-गांठ वाला चित्रण किया गया है। देश का भविष्य जमीन्दार, प्रशासन और राजनीतिज्ञों के कारण सर्वथा अन्धकारमय बना रहेगा - ऐसा बताया गया है। लस्कर पुलिस-क्लब को दस हजार रुपये देकर खेत-मजदूरों को मनमाने विधान में बरबाद करता है और हत्याएँ कराता है, आग लगवाता है।

इस प्रकार अग्निगर्भ उपन्यास में विविध सामाजिक परिस्थितियों का विवरण दिया गया।

Lesson Writer

ऐनम्पूडि कविता एम.ए.

हयवदन

- गिरीश कारनाड

प्रश्न :-

1. 'हयवदन' नाटक का सामान्य परिचय दीजिए।
2. 'हयवदन' नाटक में देवदत्त का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. 'हयवदन' नाटक में कपिल का चरित्र-चित्रण कीजिए।
4. 'हयवदन' नाटक में पद्मिनी का चरित्र-चित्रण कीजिए।
5. रंगमंच की दृष्टि से हयवदन नाटक की समीक्षा कीजिए।

प्र.1. 'हयवदन' नाटक का सामान्य परिचय दीजिए।

'हयवदन' नाटक गिरीश कारनाड की कृति है। यह नाटक मानव जीवन के मूलभूत अन्त: विरोधों, संकटों और दबावों को अत्यन्त नाटकीय एवं कल्पनाशील रूप में प्रकट किया गया है। परम्परागत शैली में नाटक का विभाजन न करके पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में प्रस्तुत किया गया है।

नर और नारी वस्तुत: एक दूसरे के पूरक हैं। इसी के अनुसार अर्धनारीश्वर की परिकल्पना की गई है। गौरी-शंकर, भवानी-शंकर, शिव-पार्वती आदि का मूल ताव यही है। द्वैत से अद्वैत में प्रस्तुत होनेवाली स्थिति का यह चित्रीकरण है।

ब्रह्मा ने ठोस मूलपदार्थ को लेकर नर का निर्माण किया है। पश्चात विविध पदार्थों से को मलता लेकर नारी का निर्माण करके उसे पुरुष के हाथ में सौंप दिया। कुछ समय बाद पुरुष नारी को लेकर ब्रह्मा के पास गया और कहने लगा, ''मैं इसके साथ जीवन बिता नहीं सकता। यह कभी रोती है, कभी लडती है और कभी झगडती है। आप कृपया उसे वापस ले लीजिए। ब्राह्मा ने तथास्तु कह कर नारी को वापस ले लेता है। कुछ समय के पश्चात् पुरुष पुन: ब्रह्मा के पास पहुँचकर कहता है, ''नारी केबिना मैं जीवन बिता नहीं सकता। कृपया नारी को मुझे वापस कर दें। ब्रह्माजी तथास्तु कहते हैं। प्रथम प्रसन्नचित्त हो पुरुष नारी के साथ रहने लगता है। कुछ दिनों बाद वह नारी के विरुद्ध अनेक शिकायतें लेकर पुन: ब्रह्मा के पास जाता है और नारी को वापस लेने की बात ठानता है। ब्रह्माजी आवेश कह देते हैं - में कभी तुम नारी को अपने पास रखना चाहते हो और कभी वापस करना चाहते हो। अपनी नारी को अपने ही पास रखो और जैसे बने, वैसे इसके साथ रहो। ''

उस समय से नर और नारी एक-दूसरे के साथ सुखमय जीवन न बिता सकते हैं और अलग होकर भी चैन से न रह सकते हैं। इस उलझाव को स्वयं प्रजापति ब्रह्मजी भी सुलझ नहीं सकते।

प्रस्तुत नाटक 'हयवदन' स्त्री-पुरुष के आधे-अधूरेपन की त्रासदी और उनके उलझावपूर्ण सम्बन्धों की अनबूझ पहेली को लक्ष्य करके लिखा गया है। स्त्री-पुरुष के अव्यवस्थितपूर्ण सम्बन्धों को आधार बनाकर 'हयवदन' नाटक रचाया है। यह नाटक हिन्दी नाटक-क्षेत्र में एवं भारतीय साहित्य में एक विशेष तथा विशिष्ट प्रयोग है। इस नाटक की पूर्व परम्परा संस्कृत साहित्य एवं अंग्रेजी साहित्य में भी लक्ष्य होती है। संस्कृत की बेताल पच्चीसी की सिरों और धडों की अदला बदली की असमंजसमी प्राचीन कथा एवं अंग्रेजी में टॉमस मान की ट्रान्सपोज्ड हैड्स (Transposed Heads) की द्वन्द्वपूर्ण आधुनिक कहानी पर आधारित यह नाटक एक नए तेवर के साथ प्रस्तुत हुआ है। इस नाटक

में देवदत्त, पद्मिनी और कपिल के प्रेम-त्रिकोण के समानान्तर हयवदन के उपाख्यान का गणेश-वन्दना के पश्चात भागवत नट, अर्द्धपटी, अभिनय, मुखौटे, गुड्डे-गुडियों और गीत-संगीत के माध्यम से एक लचीले रंग-शिल्प में प्रस्तुत किया गया है। यह भारतीय रंगमंच एवं रंगकर्म की एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। यह कन्नड नाट्य-लेखन की यह कृति सम्पूर्ण आधुनिक भारतीय रंग-कर्म की उल्लेखनीय उपलब्धि है। देवदत्त, कपिल, कपिलदेही, देवदत्त, देवदत्तदेही कपिल चार-चार पुरुषों के होते हुए भी अतृप्त एवं अधूरी और सुहागिन होकर भी अभागिन रह जाने वाली पिद्मनी इस नाट्य-कथा विलक्षण प्रसंग, रोचक चरित्र, जटिल सम्बन्ध तथा रोमांचक नाट्य मोडों के साथ-साथ दर्शन मनोविज्ञान, हिंसा, हास्य, प्रेम और रहस्य के महत्वपूर्ण अध्याय हैं। प्रासंगिक कथाएँ आकर्षक एवं सम्मोहक हैं।

हयवदन नाटक में युग-युगों से पुरुष की अपूर्णता का चित्रण सकारात्मक बना हुआ है। नाटक की कथा में मनुष्य के पूर्ण मनुष्य होने से आरम्भ होने पर शरीर और मस्तिष्क दोनों की श्रेष्ठता की कामना प्रदर्शित हुई है।

देवदत्त, कपिल और पद्मिनी की कथा आरम्भ होने से पहले 'हयवदन' द्वारा पूर्ण मनुष्य होने और पूर्णांग होना चाहने का दर्द हास्य बन कर आता है। समस्या विकसित होती है और स्थिति की वास्तविकता हमारे मन को जकड लेती है। ऐसी स्थिति में हास्य और संगीत अनुभवी पक्ष के लिए अनिवार्य अंग बनकर आता है।

'हयवदन' नाटक यक्षगान शैली में लिखा गया है और यह कथकली के साथ जोडा जा सकता है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र.2. 'हयवदन' नाटक में देवदत्त का चरित्र-चित्रण कीजिए।

देवदत्त विप्रोत्तम विद्यासगर का सुपुत्र है। स्वयं वह महान पण्डित है, प्रसिद्ध काव्य-रसिक है, कामदेव से भी अधिक सुन्दर एवं बृहस्पति के समान बुद्धिमान है। कपिल के शब्दों में - ''देवदत्त पिता से बढ़ कर पण्डित, महाकवि, काव्य-शास्त्र विनोद में पूर्ण पारंगत, सज्जन, गुणवान, स्नेहशील तथा सुकुमार। लंबे केश, तेजस्वी मुख अवस्था बीस वर्ष ऊँचाई सडसठ अंगुल।'' कपिल देवदत्त को संसार में अपना सबसे पक्का मित्र मानता है।

पद्मिनी की बिजली-जैसी तेजी को देख कर कपिल सोचने लगता है, ''मेरा सुकुमार देवदत्त इस बिजली सी तडप ने वाली लडकी को पत्नी के रूप में पाकर क्योंकर झेल पाएगा? .... इसे झेलने के लिए लोह-पुरुष चाहिए।''

देवदत्त-सदृश सुवर्ण सम्पन्न युवक नारियों का आकर्षक केन्द्र होना स्वाभाविक है। ऐसे सुन्दर युवक को हर पिता अपनी बेटी के साथ विवाह कर के अपना जमाता बनाना चाहता है। कपिल का कथन है, ''तुम्हारे लिए तो धर्मपुरी की हर काव्या के माता-पिता, आँखों के पाँवडे बिछए, तुम्हारी स्वीकृति की प्रतीक्षा में है।'' वस्तुत: वही हुआ है, पद्मिनी बात की बात में देवदत्त की पत्नी बन जाती है।

देवदत्त काव्य-रसिक होने के साथ काम-रसिक भी है। नित्य नई युवती को वह अपने प्रेम-जाल में फँसाता जाता है। एक बार देवदत्त से कपिल पूछता है, ''इस बार कौन-सी लडकी है ..... ?'' दो साल की अवधि में कम-से-कम पन्द्रह लडकियों पर उसका मन डोलता है। उसकी वासना तो गहन कोटि से आगे होती है। देवदत्त की दृष्टि में पद्मिनी उसके जीवन का सर्वस्व है। वस्तुत: पद्मिनी के अभाव में देवदत्त का जीवन अंधकारमय हो जाता है। वह अपनी मनोव्यथा कपिल के प्रति इस प्रकार व्यक्त करता है - ''कपिल, बस! वह मेरी कविता की प्रेरणा बनना स्वीकार कर ले, तो मैं कालिदास से भी बढ़कर श्रेष्ठ काव्य रच डालूँ ! .... कपिल, तुम्हारी सौगन्ध, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, यदि कभी वह रूप रत्न मुझे मिला, तो मैं महाकाली के चरणों में अपनी दोनों भुजाएँ, भगवान रुद्र के आगे अपना मस्तक समर्पित करूँगा।''

पूर्वराग में पावन वी- थी में पद्मिनी के दर्शन कर प्रथम दर्शन में ही वह पद्मिनी के आगे अपना सर्वस्व हार जाता है। कपिल के पूछने पर देवदत्त के प्रथम आवेग का परिचय मिल जाता है, ''कल संध्या को पावन वीथी में मैंने उसको देखा था। नजर हटाते नहीं बनी और उसके पीछे-पीछे उसके घर तक चला गया। ..... वहीं एक घर के भीतर वह ओझल हो गई। मैं वहीं बाहर साँझ तक खडा रहा, पर वह फिर नहीं आई।''

देवदत्त जानता है कि कपिल उसके लिए सबकुछ निछावर कर सकता है। देवदत्त के कहने पर वह कुएँ में कूद सकता है, आग पर चल सकता है और अपने माता-पिता कोभी उस पर न्योछावर कर सकता है। पद्मिनी भी प्रथम दर्शन में देवदत्त के प्रति आकर्षित होती है। कपिल के द्वारा देवदत्त का हृदय वह पहचानती है और द्वार खोल कर गाती है -

आयो रे आयो पाहुना सवार,

न जाने किस देश का है सरदार।

पद्मिनी के गर्भवती होने पर देवदत्त गृहस्थी संम्भालने लगता है। वह पद्मिनी की व्यवस्था के प्रति अधिक चिन्ता रहता है।

यात्रा के पूर्व देवदत्त पद्मिनी के गर्भ को लेकर बहुत चिंतित दिखाई देता है। पद्मिनी का यह कथन देवदत्त की मानसिक स्थिति को स्पष्टत: उजागर कर देता है - ''आज तुम्हें हुआ क्या है। तुम तो पुस्तकों में ऐसे डूब जाते थे कि भोजन के बाद हाथ धोने का भी ध्यान नहीं रहता था और आज सबेरे से रट लगाए हो कि वह हुआ या नहीं, यह हुआ या नहीं। × × × तुम बिना बात चिंता करते हो। क्या दूसरी कोई स्त्री कभी इस संसार में गर्भवती नहीं हुई? इतने डरने हो - मैं जरा भी हिली-डुली नहीं कि बस तुम्हें लगता है कि आसमान फट पड़ा। सब खत्म .....!''

पद्मिनी कपिल के आने की प्रतीक्षा जिस उत्सुकता एवं बेचैनी के साथ कहती है, उससे देवदत्त के मन में संदेह का अंकुर जमने लगता है। वह नहीं चाहता है कि कपिल के साथ यात्रा की जाए। वह बहुत ही सावधानी के साथ अपने मन की बात कह देता है - ''मैं तो यही चाहूँगा। कपिल से ईर्ष्या के कारण नहीं - मुझे कपिल से रत्ती-भर भी ईर्ष्या नहीं । उसका मन तो सोने का है, लेकिन तुम अभी पहली बार गर्भवती हुई हो।''

यात्रा स्थगित होने की खुशी को देवदत्त छिपा नहीं पाता है, क्योंकी आज पहली बार वह पद्मिनी के साथ अकेला होगा।

कपिल के आने पर पद्मिनी बात बदल देती है और वे तीनों उज्जैन की यात्रा पर चल देते हैं।

कपिल के प्रति पद्मिनी के बढ़ते हुए आकर्षण को देवदत्त मनोवैज्ञानिक विवशता के रूप में देखता है। ''कपिल को देखकर देवदत्त कहता है - पद्मिनी का भी क्या दोष है? कपिल का शरीर ही इतना आकर्षक है !..... ! आदि। ''

काफी विवाद के बाद कपिल और पद्मिनी महाकाली के दर्शनार्थ चले जाते हैं। देवदत्त के मन का संदेह उभरकर ऊपर आ जाता है – ''जाओ पद्मिनी, जाओ कपिल! भगवान् रुद्र का आशीर्वाद तुम दोनों पर रहे। तुम **दोनों मेरे हृदय के दो टुकड़े हो** – एक होकर रहो – उसी में मुझे शांति मिलेगी .....।''

उनकी आँखों से ओझल हो जाने के बाद देवदत्त महाकाली के मन्दिर की ओर चल देता है। वहाँ पहुँचकर उसे सहसा याद आता है जब उसने प्रण किया था कि यदि पद्मिनी को पा सका तो अपनी भुजाएँ और मस्तक बलिदान कर दूँगा। इतने में ही उसको वहाँ एक तलवार पड़ी हुई दिखाई देती है। उससे वह अपना मस्तक (सिर) धड़ से अलग कर देता है।

कपिल और पद्मिनी जब लौटकर आते हैं तो देवदत्त को न पाकर कपिल विशेष चिंतित होता है – पद्मिनी के अनुसार देवदत्त पूर्णत: स्वस्थ होंगे। कपिल देवदत्त को खोजने के लिए जंगल की ओर चल देता है और महाकाली के मन्दिर में पहुँच जाता है, वहाँ देवदत्त के शव को पड़ा हुआ देखकर कपिल दु:ख होता है और अपना सिर का लेता है। अँधेरा घिरते देखकर पद्मिनी भी दोनों की खोज में चल देती है और काली के मंदिर में पहुँच जाती है। अँधेरे में वह शवों के पाँवों से टकराती है और वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर विलाप करते हुए वहाँ पड़ी हुई तलवार को उठा लेती है।

तलवार उठाकर पद्मिनी निराशा में निमग्न होकर अपनी जीवन-लीला समाप्त करना चाहती है। तभी चमत्कारिक ढंग से देवी (महाकाली) उसको ऐसा करने से रोक देती हैं और दोनों के कटे हुए सिरों को उनके शरीर पर लगाने का आदेश देती हैं।

माँ के आज्ञानुसार पद्मिनी दोनों के सिर लगा देती है। दोनों जीवित हो उठते हैं, परन्तु उनके सिरों की अदला-बदली हो जाती है। पद्मिनी किसकी पत्नी हो, इस पर दोनों में विवाद होता है। अन्तत: वे तीनों विवाद के निर्णय हेतु त्रिकालदर्शी ऋषि के पास जाते हैं।

त्रिकालदर्शी ऋषि निर्णय देते हुए कहते हैं – ''जिस प्रकार वृक्षों में कल्पवृक्ष श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार अंगों में मस्तक श्रेष्ठ है और इसीलिए देवदत्त का मस्तिष्क (मस्तक) जिसके पास है, वही देवदत्त है और वही पद्मिनी का सच्चा स्वामी है।''

इस उत्तर को सुनकर कपिल (जिसका शरीर देवदत्त का और मस्तक कपिल का है) जंगल की ओर चला जाता है।

इस प्रकार पद्मिनी उस व्यक्ति की पत्नी बनती है जिसका सिर देवदत्त का और शरीर कपिल का है।

देवदत्त को पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है और वह उसमें लिप्त हो जाता है। कुछ समयोपरान्त जब देवदत्त घर से बाहर चला जाता है, तब उसकी अनुपस्थिति में पद्मिनी अपने बेटे को लेकर कपिल के घर पहुँच जाती है।

देवदत्त घर लौटने पर पद्मिनी को न पाकर वह सीधे कपिल के घर पहुँचता है। वहाँ पद्मिनी अपने पुत्र के साथ रहती है। देवदत्त कपिल से प्रश्न करता है, ''क्या तुम सचमुच पद्मिनी को चाहते हो?'' कपिल 'हाँ!' कह देता है। कपिल कहता है, ''क्या हम तीनों एक साथ नहीं रह सकते, द्रौपदी और पाण्डवों की तरह?'' जिसका उत्तर देवदत्त नहीं देता है।

अन्त में देवदत्त और कपिल एक दूसरे को क्षमा कर देते हैं। देवदत्त कपिल का जंगलीपन रहित बलशाली शरीर चाहता है और कपिल देवदत्त की बुद्धिमत्ता चाहता है। दोनों पूर्ण मानव बनना चाहते थे, किन्तु ऐसा होता नहीं। देवदत्त तन और मन के अनेक गुणों से विभूषित है, किन्तु कामासक्ति युक्त हो नहीं पाता। अन्ततः वह मानसिक वेदना भोगता है और वह सर्प की भाँति मरता और मारता है।

Lesson Writer

ऐनम्पूडि कविता एम.ए.

प्र.3. 'हयवदन' नाटक में कपिल का चरित्र-चित्रण कीजिए।

नाटक के प्रारम्भ में कपिल का प्रथम दर्शन एक बलिष्ठ युवक के रूप में होता है। वह एक पहलवान के रूप में भी प्रसिद्ध है। गांधार देश के एक मल्ल के साथ कुछ समय तक कपिल की कुश्ती भी होती है। मल्ल कपिल के बल-विक्रम से प्रभावित होता है। देवदत्त के साथ कपिल की घनी मित्रता यहाँ व्यक्त होती है। देवदत्त सदा लडकियों के पीछे काम पिपासा से पडा रहता है तो कपिल कहता है - ''दो वर्षों में कम-से-कम पन्द्रह लडकियों पर तुम्हारा मन डोलते मैं ने देखा है।''

देवदत्त कविता करता है तो कपिल भी उस कविता का आस्वादन कर देवदत्त की प्रशंसा करता जाता है। देवदत्त पद्मिनी को प्राप्त करना असम्भव समझता है, तो कपिल सच्चे मित्र की तरह उसका उत्साह बाँधता है। ''तुम विप्रोत्तम विद्यासागर के सुपुत्र, प्रकाण्ड पण्डित, विख्यात काव्य-रक्षिक, काम देव से रूपवान, बृहस्पति से .....'' आदि शब्दों से देवदत्त को वह प्रोत्साहित करता है। कपिल अन्ततः पद्मिनी का पता लगाकर उसके साथ देवदत्त का विवदह करवा देता है।

कपिल में गरीब का आत्मविश्वास दिखाई देता है। देवदत्त जब उस सुन्दरी के विषय में अपनी विवशता प्रकट करता है, तब कपिल कहता है - ''इस काम के लिए न दुर्गा चाहिए, न रुद्र, मैं अकेला ही काफी हूँ।''

कपिल निराश होने वाला व्यक्ति नहीं है। वह अपने मन्तव्य को सफल बनाने के लिए वीथी में प्रत्येक घर के द्वार को अत्यन्त बारीकी से देखता है। पद्मिनी से गृहस्वामी का नाम-पता जानने का नाटक करते हुए बड़ी चतुराई के साथ अपना मन्तव्य प्रकट कर देता है। एक निष्णात् दूत की भाँति वह नायक के गुण-वर्णन द्वारा नायिका के मन में नायक के प्रति आकर्षण उत्पन्न करता है - वह विप्रोत्तम विद्यासागर का एकमात्र सुपुत्र, पिता से भी बढ़कर पंडित, महाकवि, काव्यशास्त्र-विरोद में पूर्ण पारंगत, सज्जन, गुणवान, स्नेहशील, सुकुमार, लम्बेकेश, तेजस्वी मुख, अवस्था बीस वर्ष, ऊँचाई सड़सठ अंगुल। काव्यशास्त्र में इंगित नायक के समस्त गुणों से विभूषित देवदत्त का अपने को संसार में सबसे बड़ा मित्र बताकर वह कहता है। - ''लेकिन अब मुख्य प्रश्न यह है कि मेरा मित्र आपका कौन होगा?'' पद्मिनी कपिल के शब्दों का इशारा समझ जाती है और वह लज्जा से लाल होकर भाग जाती है। कपिल इस स्थल पर कामशास्त्र के प्रति अपनी जानकारी प्रकट कर देता है - ''देवदत्त सुकुमार है, यह लड़की एकदम बिजली है। इसे झेलने के लिए लौह-पुरुष चाहिए। देवदत्त इसे नहीं झेल पायेगा।''

अब सब लोग उज्जैन की यात्रा के साथ कपिल के प्रति पद्मिनी का आकर्षण उजागर होने लगता है। पति–पत्नी के रूप में देवदत्त और पद्मिनी रंगमंच पर पहली बार प्रकट होते हैं। उसी समय कपिल के प्रति पद्मिनी के लगाव की भनक उसे मिल जाती है। वह कपिल की प्रतीक्षा में बार–बार खिड़की से झाँकती है और कहती है – ''बड़ी देर लगाता है यह कपिल, देखो, यह अभी तक नहीं आया।''

देवदत्त को पद्मिनी का यह व्यवहार स्वभावत: अच्छा नहीं लगता – ''और दिन भर बस कपिल, कपिल, कपिल!''

पद्मिनी पूछती है – ऐसा क्यों कहते हो। देवदत्त एक अन्य घटना की ओर इंगित करके स्पष्ट कर देता है कि उसे कपिल की अधिक उपस्थिति रुचिकर नहीं लगती ।

बातचीत के मध्य देवदत्त यहाँ तक कह देता है कि, जब तुम कपिल की रट लगाती हो, तो मेरी साँस बन्द हो जाती है।

पद्मिनी कपिल के प्रति अत्यधिक अनुरक्त होने हुए कहती है कि, ''तुम्हारी इस कोमलता के साथ भगवान्–जाने कैसे दिन कटेंगे।'' कपिल के प्रति पद्मिनी का लगाव अब देवदत्त को खलने लगता है – सम्भवत: उसकी नजर में यह सब अप्रत्याशित है – ''इसके पहले कपिल कभी लजाता नहीं था, लेकिन पद्मिनी को देखते ही पूँछ हिलाने लगता है। ऐसे बैठकर पद्मिनी का मुँङ ताकता रहता है कि उसके मुँह से कोई शब्द धरती पर न गिर जाए। उसकी आँखों में तैरती यह लालसा क्या सचमुच इसे नहीं दीखती?''

देवदत्त और पद्मिनी में इसी संदर्भ में बातें ही रही हैं कि कपिल आ जाता है। देवदत्त नहीं चाहता है कि यात्रा की जाये, क्योंकि यात्रा में कपिल और पद्मिनी को अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायेगी। कपिल को यह प्रस्ताव अर्थात् यात्रा स्थगित करने का प्रस्ताव रुचिकर नहीं लगता। वह मन ही मन कहता है कि यात्रा के आठ दिन मानो किसी ने मुझे छीन लिए । यहाँ कालावधि मानो व्यर्त हो गई। इसी के साथ उसका अन्त:करण उसे सावधान करता हुआ कहता है कि तू किधर जा रहा है – ''कपिल, सँभल जा, फिसल रहा है तू – अपने को बस में रख, पकड़ ढीली न होने पाए!'' आठ दिन तक देवदत्त व पद्मिनी की ओर न आने का निर्णय करते हुए वह वहाँ से जाने को तैयार हो जाता है – ''तो मैं चला।''

परन्तु पद्मिनी कपिल को रोककर यात्रा पर चलने की बात फिर करने लगती है और विवश होकर देवदत्त को उसकी बात मानकर कपिल को साथ लेकर यात्रा करनी पड़ती है।

रास्ते में थोड़ा विश्राम हेतु गाड़ी रुकती है। पद्मिनी के कहने से कपिल सुहाग के ढेर सारे फूल ले आता है। पद्मिनी द्वारा प्रश्न करने पर कपिल फूल के सुहाग नाम की अर्थात सुहाग के फूल नाम की सार्थकता पर प्रकाश डालता है। कपिल की बाह्य कठोरता के पीछे कोमल भावुकता झाँकती रहती है। पद्मिनी के प्रति वह आसक्त भी होता है।

कपिल और पद्मिनी रुद्रमन्दिर की ओर भगवान रुद्रदेव के दर्शन के लिए चले जाते हैं। पद्मिनी और कपिल का प्रेम-वासनात्मक आकर्षण सर्वथा उजागर हो जाता है। पद्मिनी के प्रथम दर्शन से ही वह अभिभूत हो उसके प्रति आकर्षित होता है।

पद्मिनी गर्भधारण कर बच्चे को जन्म देती है। वह कपिल से कहती है, ''यह बच्चा तुम्हारी देह का प्रसाद है।'' कपिल और पद्मिनी रुद्रमन्दिर से लौट कर आते हैं। वहाँ देवदत्त को न पाकर कपिल चिन्तित होता है। वह वासना द्वारा सर्वथा पराभूत नहीं होता। पद्मिनी के एकांत साहचर्य का अवसर उसे देवदत्त की मित्रता एवं अपने मित्र के कुशल-क्षेम से विमुख न हो कर वह उसकी खोज में निकल पडता है। काली के मन्दिर में देवदत्त के शव को देख कर कपिल देवदत्त के कटार से अपना सिर काट लेता है। वह कहता है - देवदत्त, मेरे भाई, मेरे पिता, मेरे मित्र ..... मुझ से दुखी हो तुमने यह संसार छोड दिया है। लो, मैं आता हूँ! सदा की तरह तुम्हारे चरण-चिह्नों पर चलता हुआ।

माँ काली की कृपा से देवदत्त और कपिल दोनों जीवित हो जाते हैं। किन्तु घबराहट में पद्मिनी देवदत्त और कपिल के सिरों की अदला बदली कर देती है। कपिल को देवदत्त का शरीर प्राप्त होता है और देवदत्त को कपिल का ।इस कारण दोनों के व्यक्तित्व में परिवर्तन आ जाता है। कपिल पद्मिनी को पत्नी के रूप में प्राप्त करके का अधिकारी मानता है। वह देवदत्त से कहता है, ''पर तुम से पद्मिनी का क्या सम्बन्ध ? पद्मिनी मेरे साथ जायेगी। मेरी पत्नी मेरे साथ चलेगी न। मुझे देवदत्त का शरीर मिला है, इसलिए तुम मेरी स्त्री हुई।''

पद्मिनी देवदत्त के साथ जाने लगती है। कपिल उन्हें रोकता है। देवदत्त कपिल के शरीर के बल का प्रयोग करते हुए कपिल को एक ओर धक्का देकर हटा देता है और साथ ही सुअर की गाली का प्रयोग करता है।

देवदत्त और कपिल दोनों के बीच काफी कहा-सुनी होती है। कपिल देवदत्त को धमकी देते हुए कहबता है - ''तुम समझते हो, मेरी स्त्री को भगाकर ले जाओगे और मैं चुप बैठा रहूँगा? आखिर जाओगे कहाँ? चलो, मैं भी वहाँ जाकर सड़कों पर ऐसा हंगामा मचाऊँगा कि देखना!''

अन्तत: पद्मिनी कपिल से अनुरोध करती है कि हमें छोड़ दो। वह गिड़गिडाकर कहती है - क्यों सता रहे हो, कपिल? तब कपिल एक कठोर यथार्थ के उजागर करते हुए कहता है, ''मैं जानता हूँ, तुम क्या चाहती हो, पद्मिनी! देवदत्त का मस्तिष्क और कपिल का फैलादी शरीर।''

अन्तत: पद्मिनी देवदत्त को प्राप्त होती है और वह - ''अच्छा कपिल, चलती हूँ। ××× फिर मिलेंगे, कपिल! कहकर कपिल से विदा लेती है।''

भगवान सूत्रधार के अनुसार-इस प्रकार रास्ते अलग-अलग हो गये। कपिल ने जंगल का रास्ता लिया। एक बाज जंगल गया, तो फिर धर्मपुरी की ओर मुड़ा तक नहीं। धर्मपुरी ही क्यों, किसी भी बस्ती की हवा तक नहीं ली।

कुछ अन्तराल के बाद कपिल रंगमंच पर प्रकट होता है। वह नाटक में शुरू वाला कपिल बन जाता है। वह भागवत के माध्यम से बताता है कि इतने दिनों से वह जंगल में था। बहुत दिन हुए तब पिताजी का बुलावा आया था, पर मैंने जाने से मना कर दिया और यह भी कहलवा दिया कि आप भी इधर न आएँ। भागवत कपिल को बताता है कि तुम्हारे माता-पिता का देवलोक-प्रस्थान हो गया है और पद्मिनी के बेटा हुआ है। दोनों समाचार उस पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालते हैं। वह लकड़ी काटने का अभिनय करता है। उसी समय अपने पुत्र को गोद में लिए हुए पद्मिनी आती है। दोनों एक दूसरे को आमने-सामने देखकर जड़वत् हो जाते हैं।

वे दोनों बच्चे को एक-दूसरे का बच्चा बताते हैं। पद्मिनी स्पष्ट कहती है -

कपिल पूरे विश्वास के साथ कहता है - ''उस दिन मैंने नहीं माना था, पर आज मानता हूँ, मैं कपिल हूँ।''

कपिल बच्चे को देखता है और पद्मिनी से कहता है - ''जाओ भीतर जाकर विश्राम कर लो।'' कपिल कहता है कि देवदत्त का शरीर पाकर मैं सुकुमार बन गया था। परन्तु मैने निरन्तर अभ्यास और श्रम किया और अब मैं कोसों दौड़ सकता हूँ, बरसाती बाढ़ में भी कूदकर तैर सकता हूँ, बड़े से बड़ा पेड़ गिरा सकता हूँ। शुरू में पेट साथ नहीं देता था, पर अब जो भी मिले पचा सकता हूँ। नहीं मिलता, तो भी रोता नहीं । ××× इसीलिए तो मैं अब कपिल हूँ, जिसका चेहरा उसके शरीर से मेल खाता है।

ऐसा लगता है कि पद्मिनी के प्रति कपिल के मन में पूर्ववत् लगाव नहीं है। वह पद्मिनी से प्रश्न करता है – ''देवदत्त को क्यों छोड़ आई? यहाँ क्यों आई?''

घर पर पद्मिनी को न पाकर देवदत्त सीधा कपिल के पास पहुँचता है – वहाँ पद्मिनी है ही। कपिल देवदत्त को बताता है कि, ''मैं तुम्हारी कविता पर तुम्हारी कल्पना-शक्ति पर मुग्ध था, मेरे लिए पेड़ का मतलब पेड़, आकाश का अर्थ आकाश ही था। तुम्हारे शरीर ने नई चेतना दी, नए शब्द दिए। ऐसी चेतना मैंने पहले कभी अनुभव नहीं की थी। मैंने सहसा एक-दो कविताएं भी घसीट डालीं। बेशक निकम्मी ही हैं। कभी-कभी मुझे उस सबसे घृणा होती है जो तुम्हारे शरीर ने मुझे दिया है।''

इसी अवसर पर वह दो-टूक कहता है कि मैं पद्मिनी को चाहता हूँ। साथ ही यह प्रस्ताव भी रखता है कि द्रौपदी और पाण्डवों की भाँति हम तीनों एक साथ रह सकते हैं।

देवदत्त और पद्मिनी को यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं । कपिल देवदत्त से फिर कहता है – ''मुझे तुम्हारी देह मिली, बुद्धि नहीं।''

देवदत्त का प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कपिल अपनी तलवार लाता है। दोनों द्वन्द्व-युद्ध में वीरगति को प्राप्त होते हैं। जूझने के पहले कपिल दार्शनिक भाव से कहता है – ''उस दिन माँ काली के मंदिर में हम दोनों ने कितने धैर्य से अपना-अपना शीश काट डाला था। लेकिन अब किसका शीश, किसका शरीर। आत्महत्या या हत्या कुछ समझ में नहीं आता। ××× उस दिन माँ काली के सामने जिस हाथ ने जिस मस्तिष्क को अलग किया था, आज भी वही हाथ उसी मस्तिष्क को काटे।''

कपिल और देवदत्त सच्चे मित्र हैं। कपिल भोला-भला, सीधा-सादा, सच्चा इन्सान है। पद्मिनी के प्रति आसक्ति उसे अपने मार्ग से भटका देती है। देवदत्त का शरीर पाकर उस में बुद्धमत्ता अंकुरित होती है। जीवन के अंतिम क्षणों में वह अपने कर्मों पर पछताता है क्येंकि उसने अपने मित्र के साथ कृतघ्नता की है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र.4. 'हयवदन' नाटक में पद्मिनी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

पद्मिनी अनुपम तथा अद्वीतीय सौन्दर्य की राशि है। वह दो परम मित्रों देवदत्त एवं कपिल से एक साथ प्रेम करती है। वस्तुत: वह उन दोनें के लिए एक पहेली बन जाती है। देवदत्त की धर्मपत्नी होते हुए भी वह शारीरिक आकर्षण के घनी कपिल के प्रति अधिक अनुरक्त होती है। उसका पुत्र कपिल की ही देह का प्रसाद है और अन्त में वह कपिल के पास ही पहुँचती है और विरक्त कपिल को अन्तिम क्षणों में पुन: अनुरक्त बना देती है। कपिल की कामासक्ति को वह उजागर करती है। कपिल कहता है, ''तुम आयी, मुझे छुआ, मेरा हाथ थामा और मेरे शरीर को तुम्हारे शरीर की याद हो आयी।''

2. अननन्य सौन्दर्यवती :

पद्मिनी का अप्रत्यक्ष परिचय नाटक में देवदत्त के द्वारा होता है। वह कपिल से पद्मिनी की अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करता है। वह अभिभूत हो कर कहता है, ''आज तक मैं एक दम अंधा था। मैं उस धोखे में था कि कविता ही सुन्दर समझता हूँ। उस निन्द्य रूपवती को देखने के पहले में कालिदास की काव्यक्षी को समझता ही नहीं था। .... वह बस मेरी कविता की प्रेरणा बनना स्वीकार कर ले तो कालिदास से भी श्रेष्ठ काव्य रचडालूँ।''

पद्मिनी कपिल के लिए द्वार खोलने पर, दर्शकगण उसकी झाँकी पाते हैं। कपिल के शब्दों में पद्मिनी –यक्षिणी, इन्दुमति, उर्वशी आदि है।

3. वाक् चातुरी तथा चंचलता :

पद्मिनी वाकचातुरी के साथ चंचल भी है। कपिल के द्वार खटखटाने पर वह द्वार खोल कर वाकचतुरता प्रकट करते हुए कहती है, ''आप को मेरे पिताजी से काम है या इस घर के स्वामी से ? '' अन्त में उसकी वाक्चातुरी तथा चपलता के सामने कपिल हार मान लेता है, तो पद्मिनी कहती है, ''यानी मेरे पाँव नहीं छुएँगे, मैं जानती थी। आजकल किसी का भरोसा नहीं करना चाहिए।''

कपिल भी काम घाघ नहीं है। वह देवदतत्त का परिचय बताने के उपरान्त सीधा–सा प्रश्न करता है – ''लेकिन अब मुख्य सवाल यह है कि मेरा मित्र आपका कौन होगा ?''

कपिल मानो अपना काम पूरा कर लेता है और वह जितना सोचकर आया था, उससे अधिक सफलता उसको प्राप्त होती है। पद्मिनी देवदत्त की पत्नी बन जाती है। पद्मिनी धर्मपुरी के एक प्रमुख व्यापारी की सुपुत्री है, जिसके घर स्वयं लक्ष्मी झाड़ू लगाती है। यह है पद्मिनी का पारिवारिक संदर्भ।

4. देवदत्त से विवाह :-

निर्लज्ज कुलवधू पद्मिनी यद्यपि देवदतत्त की पत्नी बनती है, तथापि वह प्रथम मिलन में ही कपिल के प्रति आसक्त हो जाती है। कपिल वस्तुत: एक बलिष्ठ पुरुष है। उसके सुन्दर सुगाठित व्यक्तित्व पर रीझ जाना एक अल्ह़ किशोरी के लिए सर्वथा स्वाभाविक है। द्वार के कपाट खोलते ही पद्मिनी और कपिल एक-दूसरे को देखते हैं। पद्मिनी के अपूर्व ररूप को देखकर कपिल दूसरी दुनियाँ में पहुँच जाता है और उधर पद्मिनी भी कपिल को यह कहकर टोकती है कि ऐसी मूरत बने क्यों खड़े हो?

जब कपिल पद्मिनी से यह प्रश्न करता है कि मेरा मित्र आपका कौन होगा, तो पद्मिनी अपने स्वभाव के अनुसार न तो किसी प्रकार का आक्रोश व्यक्त करती है और न कपिल से किसी प्रकार का प्रति-प्रश्न ही करती है। मानो वह अपने मन में कपिल और उसके मित्र देवदत्त का वरण कर चुकी होती है, ''धीरे-धीरे कपिल के शब्दों का इशारा समझने से लज्ज्ा से लाल होकर 'हाय, भैया!' कहकर भाग जाती है।''

सम्भवत: कपिल उस लौह-पुरुष के स्थान पर अपने को रखकर देखने लगता है। यह तो वह कहता ही है - ''मित्र देवदत्त! मेरा मन बेचैन हो गया।'' तुम सो सुकुमार हो ××× और यह लड़की तो एकदम बिजली है।××× तुम मानोगे नहीं। और मैं भी अब कैसे पीछे हटूँ? और पद्मिनी के माता-पिता से मिलने के लिए पद्मिनी के पीछे मकान के अंदर चला जाता है। सम्भवत: पद्मिनी भी यही चाहती थी। अन्यथा अपने पिता के बारे में जानकारी देने में इतना आगा-पीछा करने वाली पद्मिनी भी यही चाहती थी। अन्यथा अपने पिता के बारे में जानकारी देने में इतना आगा-पीछा करने वाली पद्मिनी द्वार के कपाट खुले छोड़कर अंदर क्यों भाग जाती ?

वह पद्मिनी आरम्भ से ही कपिल के कुशल-क्षेम के विषय में अतत्यधिक चिंतित दिखाई देती है। सब लोग उज्जैन की यात्रा पर जाने का कार्यक्रम बना लेते हैं और कपिल गाड़ी लेने चला जाता है। वापस आने में कपिल को अपेक्षा से कुछ अधिक विलम्भ हो जाता है। पद्मिनी व्यग्र हो जाती है। कपिल को आता हुआ देखने के लिए बार-बार खिड़की के पास जाती है और कहती है - ''कितनी देर लगा रहा है यह कपिल!''

कपिल के प्रति इतनी व्यग्रता देखकर देवदत्त खीझ उठता है – ''और दिन भर बस, कपिल, कपिल, कपिल! पद्मिनी यहाँ तक कह देती है – उस पर क्यों बरसते हो? भूल मेरी ही थी ××× मैं ने उसे सुनने का बुलाया था।''

देवदत्त जब यह कहता है कि हमारे एकान्त में कपिल बाधा बनता है, तो पद्मिनी एक ऐसा वाक्य कहती है जो कपिल और देवदत्त को तरकीब के रूप में प्रस्तुत करने के लिए काफी है – ''कपिल से तुम इस हद तक जलते हो?''

5. कपिल के प्रति आकर्षण :

देवदत्त नहीं चाहता है कि यात्रा की जाये, क्योकि यात्रा में पद्मिनी और कपिल के मिलन के अधिक अवसर मिलेंगे। परन्तु पद्मिनी देवदत्त का एक भी तर्क सुनने को तैयार नहीं है। यहाँ तक कि देवदत्त के मना करते रहने पर भी वह गाड़ी में अपना सामान लदवा देती है और वह भी कपिल के द्वारा कपिल के संदर्भ में पद्मिनी का व्यवहार देख–पढ़कर दर्शक–पाठक समझने लगते हैं कि दाल में कुछ काला है।

सबसे बड़ी बात यह है कि देवदत्त किसी भी प्रकार चाहता है कि पद्मिनी कपिल के साथ उदासीन हो जाए, परन्तु वह मानती नहीं, इतना ही नहीं देवदत्त से मुँजोरी करने लगती है – ''तुम्हारा मतलब है, उससे बात करने में डर है? तुम्हारी बातों से लगता है, जैसे कपिल तुम्हारा मित्र रहा ही नहीं?''

देवदत्त पद्मिनी के गर्भ की रक्षा के प्रति बहुत ही चिंतित दिखाई देता है। वह नही चाहता कि यात्रा आदि में होने वाली हलचल द्वारा गर्भस्थ शिशु को किसी प्रकार की क्षति पहुँचे। परन्तु पद्मिनी प्रत्येक बार देवदत्त को झिडकती है । बेचारा देवदत्त जितनी बार गर्भ की बात कहकर, कपिल को निरीह तथा निर्दोष बताकर पद्मिनी को सन्तुष्ट करना चाहता है, उतनी ही बार पद्मिनी अधिक ढ़ीठता का व्यवहार करती है। कपिल के गाडी हाँकने पर पद्मिनी रीझ कर उसकी प्रशंसा करती है। पद्मिनी को सन्तुष्ट करने के लिए कपिल सुहाग का फूल लेता है तो पद्मिनी रीझ कर उसकी प्रशंसा करती है, ''कपिल का शरीर ही इतना आकर्षक है। ... न जाने यह किस भाग्यशालिनी का हाथ थामेगा। यह सुडौल काया, कोई भी नारी मुग्ध हो जाये।''

6. कलंकित मन :-

पद्मिनी का मन कलंकित है। परन्तु लोक-लाज से डरती है। पति देवदत्त से भी अपने पर पुरुष को छिपाना चाहती है। समाज की दृष्टि में वह एक लांछित नायिका है। कपिल और पद्मिनी रुद्र के मन्दिर जाते हैं। उनके लौटने पर, कालीमाता के सम्मुख देवदत्त अपना सिर धड से अलग कर चुका होता है। कपिल देवदत्त को खोजे हुए उसके शव से टकरा जाता है और अपना सिर भी धड से अलग कर डालता है।

7. अदला-बदली :-

उन दोनों शवों को देख कर पद्मिनी बिलरवती है। देवी के आशीर्वाद बल से वह देवदत्त और कपिल सिरे और घडो को हेर-फेर कर लगा देती है। उस अदला-बदली में देवदत्त का सिर कपिल के धड से और कपिल का सिर देवदत्त के धड से लगा दिया जाता है। फलत: देवदतत्त और कपिल पद्मिनी को अपनी-अपनी पत्नी मानते है। बात बहुत बढ़ जाती है। वह देवदतत्त विशेषण बलवान होता है। देवदतत्त और पद्मिनी परसस्पर प्यारी, स्वामी, बिजली, आलोक, मल्लिका, इन्द्र कहकर प्रेम कलाप करते है। देवदत्त के साथ जाना वह अपना धर्म मानती है। कपिल के लिए संतोष की बात बतायी जाती है कि देवदत्त का शरीर कपिल का है।

8. पुत्रवती :-

पद्मिनी एक पुत्र की माँ बनती है। वह नाचने-गाने वाली गुड़िया लाती है और बच्चे को खिलाती रहती है।

पद्मिनी कपिल को और उसके संसर्ग को भूल नहीं पाती है। वह बड़े घुमानव के साथ कपिल के शरीर से आने वाली गंध की प्रशंसा करती है, ''काली के मंदिर से लौटने के बाद, तब तुम्हारी देह की ऐसी मर्दानी महक होती थी।''

देवदत्त तत्काल कह देता है - यानी वह कपिल की बिना धुली देह थी, पसीने की महक ? ××× वह तुम्हें अच्छी लगती थी ?

पद्मिनी उसके प्रश्न का उत्तर न देकर सर्वथा भिन्न प्रसंग छेड़कार बात को उड़ा देती है। पद्मिनी को शरीर का सच्च्वा सुख कपिल द्वारा ही प्राप्त हुआ था। यह बात तब एकदम साफ हो जाती है, जब वह कपिल से कहती है - ''यह बच्च्वा तुमको जाया है। × × × तुम्हारी ही देह का प्रसाद है। यह भी ज्ञातव्य है कि विवाह के बाद ही तत्काल पद्मिनी गर्भवती हो जाती है।''

पद्मिनी कपिल की माँ की मृत्यु का समाचार देती है। देवदत्त को यह सब अच्छा नहीं लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कपिल की स्मृति पद्मिनी का पीछा एक पल को भी नहीं छोड़ती है।

नई गुड़िया लाने के लिए पद्मिनी देवदत्त को उज्जैन भेज देती है। उज्जैन से देवदत्त के आने के पहले पद्मिनी अपने बेटे को लेकर कपिल की स्मृति पद्मिनी का पीछा एक पल को भी नहीं छोड़ती है।

नई गुड़िया लाने के लिए पद्मिनी देवदत्त को उज्जैन भेज देती है। उज्जैन से देवदत्त के आने के पहले पद्मिनी अपने बेटे को लेकर कपिल के पास उसके गाँव में स्थित घर पहुँच ाती है। उस समय कपिल कुल्हाड़ी द्वारा लकड़ी काट रह होता है।

कपिल प्रश्न करता है - तुम यहाँ, क्यों, कैसे? पद्मिनी का उत्तर है कि प्रकृति और प्रकृति के साथ बिताए जाने वाले जीवन से परिचित कराने के लिए अपने बेटे को उसके पास लाई है - ''मेरा बेटा नहीं जानता था कि नदी के साथ कोई कैसे हँसता है, ठंडी हवा में कैसे काँपता है। पाँवों में काँटे कैसे चुभते हैं।×××''

पद्मिनी क्लिष्ट भाषा में कहती है - ''मैं जंगल में भटक गई।× × × गलत राह पाँव से नहीं छूटी, चिपकी रही।'' इसी अवसर पर पद्मी इस कठोर सत्य को उजागर करती है, यद्यपि यह सत्य अप्रकट भी नहीं था - ''तुम्हारी ही देह का प्रसाद है। ''

अपनी देह के प्रति इंगित करते हुए कपिल कहता है कि अनवरत श्रम एवं अभ्यास द्वारा मैंने अपनी देह को कपिल की देह बना लिया है - ''अब सचमुच कपिल हूँ।''

पद्मिनी को सांत्वना देने के साथ वह बच्च्वे को देखता है। ''दोनों एक-दूसरे से कहते हैं - तुमको पड़ा है'' अपने सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय देती हुई पद्मिनी कहती है - ''तुम्हारी बाँह जैसा तिल इसकी बाँह पर भी है।''

पद्मिनी बार-बार कहती है - अब तुम्हारा वह कोमल शरीर कठोर बन गया है। कपिल कहता है - अब मेरा श्रीर चेहरे से मेल खाता है।

कपिल चाहता है पद्मिनी वापस चली जाए। परन्तु पद्मिनी तब तक रुक जाती है, जब तक उसका बच्च्वा सोता है।

कपिल को पुरानी यादें सताने लगती हैं। उसका कठोरपन सताही साबित होता है। मेरे प्यारे कपिल कहती हुई पद्मिनी कपिल के वक्ष पर अपना सिर टेक देती है।

9. सती :-

लौटने पर पद्मिनी को घर मने न पाकर देवदत्त हाथ में तलवार लिए सीधा कपिल के घर पहुँच जाता है। वहाँ उसकी भेंट पद्मिनी से भी हो जाती है। वह देवदत्त के हाथों से गुड़िया लेकर चुपचाप खड़ी हो जाती है। देवदत्त और कपिल के मध्य काफी लम्बा संवाद चलता है। वे दोनों परस्पर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। द्वन्द्व-युद्ध में दोनों वीरगति को प्राप्त होते हैं। पद्मिनी दोनों के शवों के मध्य बैठकर विलाप करती है। ''मैं यदि दोनों के साथ रहने को तैयार हो जाती, तो शायद यह दिन देखने को न मिलता । परन्तु मैं भली भाँति जाती हूँ कि तुम दोनों एक-साथ सुख से नहीं रह सकते थे। तुम्हें अपने शरीरों का भी साझा करना पड़ा। तुम दोनों भाइयों की तरह रहे, लड़े और मेरे। तुमने एक-दूसरे को क्षमा भी कर दिया। मैं ही रह गई।'' पद्मिनों देवदत्त और कपिल के साथ सती हो जाती है। सती होने के पहले वह अपने बेटे का योग-क्षेम भागवत को सौंपती हुई कहती है - ''भीतर झोंपड़ी में मेरा बेटा सोया है। उसे तुम सम्हाल लो। यहाँ के शिकारियों को सौंप देना । उनसे कहना यह कपिल का बेटा है। कपिल उनका प्रिय था, वे कपिल के बेटे का अच्छी तरह पालन करेंगे? वह इसी जंगल में पेड़ों और नदियों के साथ खेल-कूदे, बढ़े। पाँच वर्ष बाद उसे धर्मपुरी के विप्रोत्तम विदद्यासागर के पास ले जाना। कहना, यह देवदत्त का पुत्र है। उनसे बहुत धन मिलेगा।××× ये गुड़ियाँ मेरे बेटे को दे देना। मैं अब उससे नहीं मिलूँगी। भीतर गई तो कहीं उसका मोह मुझे न रोक ले।''

10. प्रकृति-प्रेम :-

प्रकृति का प्रेम पद्मिनी के व्यक्तित्व का एक बहुत महत्त्वपूर्ण भाग है। सम्भवत: इसी कारण वह प्रकृति के पुत्र कपिल के प्रति आकर्षित हो गई थी। उज्जैन जाते समय जब वे लोग विश्राम के लिए रुकते हैं, तो वहाँ के प्राकृतिक दृश्य उसका मन मोह लेते हैं।

शादी के तत्काल बाद वह देवदत्त के साथ झील पर घूमने जाती है।

मार्ग में वह कपिल को भेजकर सुहाग के फूल मँगाती है।

11. निष्कर्ष :-

इसी प्रकृति-प्रेम के वशीभूत हेकर वह भगवान रुद्र के दर्शन हेतु ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चल पड़ती है।

आज तक कोई नहीं जानता कि पद्मिनी कहाँ सती हुई। जंगल के शिकारियों से पूछो तो वे जंगल के बीच एक हरा-भरा सुहाग के फूलों का वृक्ष बताते हैं। कहते हैं, आजड भी पूर्णिमा और

अमावास की रात को एक-गीत उस वृक्ष की जड़ों से उठकर सारे जंगल में सुगंध की तरह भर जाता है।

पद्मिनी ने देवदत्त की विवाहिता पत्नी होकर एक अन्य पुरुष कपिल से प्रेम किया और उसका गर्भ धारण किया। इस प्रकार एक साहसी संतान को जन्म दिया। उसने भारतीय कुल-ललना की भाँति पतिव्रता धर्म का पालन नहीं किया और दो मित्रों के मध्य खटास पैदा की तथा अपने ही शब्दों में उन्हें मृत्यु की ओर धकेलकर अपने किए पर वह स्वयं भी पछताई। कपिल के सामने उसने स्वीकार किया - ''मैंने हजार बार कहा - भूल मैंने की । बिगाड़ जो होना था, से हो गया। अंतिम क्षण में देवी के सामने वह कहती है - दूसरी स्त्रियाँ जनम-जनम में वही पति पाने की कामना कर सकती हैं। मेरे लिए यह भी नहीं। मैं सुहागिन होकर भी अभागिन रह गई। कामासक्ति के कारण अपने स्थान से च्युत हुई पद्मिनी जनता की सहानुभूति प्राप्त नहीं कर सकी अर्थात् सती होकर भी सती नारी का सम्मान प्राप्त नहीं कर सकी।''

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र.5. रंगमंच की दृष्टि से 'हयवदन' नाटक की समीक्षा कीजिए।

हयवदन नाटक की सफल रंगमंचीयता (मंचन) के **रामगोपाल बजाज** साक्षी हैं – '''हयवदन' पहले पढ़ा, 'दिशांतर' के लिए कारान्त के निर्देशित में अभिनय किया। सत्यदेव दुबे के निर्देशन में हुआ प्रदर्शन देखा ××× प्रस्तुतियों की विभिन्न समीक्षाएँ पढ़ीं।''

कथावस्तु :

नाटक की कथावस्तु के दो पक्ष हैं – मुख्य कथा तथा उपकथा। उपकथा में प्रेम–कथा का त्रिभुज बनता है। देवदत्त और कपिल भुजाएँ हैं और पद्मिनी उसका आधार है। कला का चढ़ाव और उतार सर्वथा क्रमिक है। पाँचों कार्यावस्थाएँ–प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम–स्पष्टतचा: परिलक्षित होती हैं।

पद्मिनी के साथ देवदत्त का विवाह होता है, परन्तु पद्मिनी देवदत्त के मित्र कपिल के प्रति अनुरक्त रहती है। उज्जैन की यात्रा के मध्य दोनों मित्र महाकाली के चरणों में अपने–अपने शीश चड़ा देते हैं। देवी का वरदान प्राप्त करके पद्मिनी दोनों के सिर धड़ों से जोड़कर उन्हें जीवित कर देती है। परन्तु उतावली में सिरों का अदला–बदली कर जाती है।

कपिल देहधारी देवदत्त की अनुपस्थिति में पत्नी पद्मिनी अपने बेटे को लेकर देवदत्त की काया धारण करने वाले कपिल के पास पहुँच जाती है। देवदत्त भी पीछे–पीछे पहुँच जाता है। देवदत्त और कपिल में द्वन्द्व–युद्ध होता है। दोनों वीरगति को प्राप्त होते हैं। उनके शवों के साथ पद्मिनी सती हो जाती है। अंतिम समय वह अपने पुत्र को भागवत के सुपुर्द कर जाती है – यह कहकर कि इसे इसके पितामह विद्यासागर के पास धर्मपुरी पहुँचा देना।

हयवदन कर्नाटक की राजकुमारी और सौराष्ट्र के राजकुमार के घोड़े के अटपटे संयोग से जन्म लेता है – घोड़े का मुँह तथा घोड़े का शरीर। पूर्ण मनुष्य होने के लिए चित्रकूट की काली माता के पास जाता है। उनके प्रसाद से वह पूर्णघोड़ा बन जाता है, जिससे वह प्रसन्नता का अनुभव करता है, परन्तु उसकी आवाज आदमी की बनी रहती है। इसे वह अभिशाप को पीठ कर बैठाकर हयवदन मंच के चक्कर लगाता है और सवार बालक की इच्छानुसार ही–ही करके हँसता जाता है। उसकी ही–ही यकायक घोड़े की हिनहिनाहट में बदल जाती है। मनुष्हय की आवाज से पीछा छूटने पर हयवदन पूर्ण घोड़ा होने का आनन्द–लाभ करता है।

नट द्वारा भागवत धर्मपुरी के विप्रोत्तम विद्यासागर के पास यह सुखद समाचार भेजता है कि एक बड़े सफेद घोड़े पर सवार होकर आपकी सेवा में उपस्थित होने वाला है। इस प्रकार मुख्य कथा और उपकथा का संगम अथवा एकीकरण अत्यन्त स्वाभाविक रूप में सम्पन्न होता है। दोनों कथाएं पृथक् होते हुए भी परस्पर पूरक बन जाती हैं। नाटक के आरम्भ में भागवत, नट और हयवदन का उपकथा–प्रसंग क्रमानुसार–देवदत्त और कपिल के लिए सिर और शरीर के विपर्यय की ओर ले जाते है। यह कथा–प्रसंग सर्वथा अनोखा एवं रोचक है। नाटक के आरम्भ में – देवदत्त, कपिल और पद्मिनी की कहानी आरम्भ होने के पूर्व, हयवदन के पूर्ण मनुष्य होने, पूर्णांग होना चाहने का दर्द हल्के हास्य की सृष्टि करता है। कथा के विकसित होने पर कथानक की वास्तविकता गम्भीरता में बदल जाती है। नाटक में संगीत द्वारा विषय को आनुभूतिक तीव्रता और सूक्ष्मता प्रदान की जाती है । सि प्रकार हास्य और संगीत अनुभूति पक्ष का अनिवार्य अंग बनकर आता है। ध्यातव्य यह है कि नाटक के सभी गाने अवसर के अनुकूल हैं और वे पात्रों के मनोभावों का उद्घाटन करते रहते हैं। नाटक में पात्रों की संक्या सर्वथा सीमित है –

पात्र :- पुरुष पात्र 6 हैं - भागवत, देवदत्त, कपिल, हयवदन तथा दो नट।

नारी पत्र 3 हैं - पद्मिनी तथा दो बोलती हुई गुड़ियाँ।

इस प्रकार नेपध्य में पात्रों की भीड़ व उनकी सज्जा की कोई समस्या नहीं है।

दृश्य :- नाटक में दृस्यों की संख्या भी सर्वथा सीमित है –

(1) पूर्वार्द्ध - (1) मंच पर एक कुरसी व गणेशमुख।

(2) देवदत्त का घर जिसमें बाहर झाँकने के लिए खिड़की। एक बैलगाड़ी की पेंटिंग–रंगवटी की सहायता से बैलगाड़ी द्वारा यात्रा दिखाई जा सकती है।

(3) माँ काली के मंदिर की पेंटिंग।

(4) सुहाग के फूलदार वृक्ष की पेंटिंग।

(5) कपिल और देवदत्त के मुखौटे।

(2) उत्तरार्ध – रंगपटी

नाटक में प्रयुक्त समस्त दृश्यों का विधान रंगीन पर्दे एवं रंगपटी की सहायता से किया जा सकता है। रंगमंच पर विशेष सामान रखने और उसको हटाने का झंझट नहीं है।

एक स्थान पर दोनों गुड़ियाँ परस्पर झगड़ती हुई तथा तरह-तरह की गालियाँ बकती हुई दिखाई देती हैं, वे एक दूसरे के कपड़े तक फाड़ डालती हैं और अंत में दोनों थककर हाँफती हुई, हँसती हुई बैठ जाती हैं।

यह स्थान बहुत रोचक एवं मनोरंजक है। प्रेक्षक के श्रम का सहज भाव से परिहास कर देता है। अंतिम दृश्य में बालक को पीठ पर बैठाकर हयवदन चक्कर लगाता है । बालक गाना गाता है और हयवदन को चाबुक मारने का अभिनय करता है तथा हयवदन की ही-ही की हँसी की आवाज हिनहिनाहट में बदल जाती है। यह स्थल समस्त नाटक में अत्यन्त मनोरंजक हैं।

देश-काल :-

देश-काल की दृष्टि से भी नाटक में पूरी सावधानी बरती गयी है। भाषा में विदेशी शब्दों का अभाव है। मार्ग पथरीले और ऊबड़-खाबड़ बताए गए हैं - रुद्र व काली के मंदिर खण्डहर हो गये हैं। धर्मपुरी में उज्जैन की यात्रा ठेल या बस में न दिखाकर बैलगाडी द्वारा दिखाई गई है। इससे नाटक पर देश-काल तत्त्व की गहरी छाप पड़ती है।

हयवदन नाटक में कम-से-कम 20 साल की कालावधि की घटनाओं का समावेश हुआ है। एक ओर पद्मिनी प्रेमकथा विविध स्तरों पर चलती रहती है और दूसरी ओल हयवदन के पूर्णांग होने की प्रक्रिया चलती रहती है। किन्तु संकलन त्रय का निर्वाह पूर्णतथा न हो पाता है। देवदत्त, कपिल और पद्मिनी की प्रेमकथा लोक-विस्तृत है। अत: वह अस्वाभाविक न बन कर रसमय बनजाती है। प्रेक्षकगण उसके साथ तादात्म्य गढ़ लेते हैं। प्रेक्षक पद्मिनी और कपिल की चतुराई और देवदत्त की सज्जनता एवं सहिष्णुता का आस्वादन करते जाते हैं।

समस्या :-

नाटक की समस्या लोक-मानस की समस्या है। मानव आदर्शमय पूर्णता प्राप्त करना चाहता है। कभी उसकी मनोभावना कलवती होती है। मानव जन्म को प्राप्त करने के पहले पशु-स्तर पर पूर्ण विकास अनिवार्य है। हयवदन इसे प्राप्त करता है।

भाषा-शैली :-

नाटक की भाषा-शैली सहज, सरल एवं संप्रेषणीय है। कपिल का मन सोने का है। गरम तवे पर खडा मेरी शह देखा रहा होगा। आसमान फट पडा है। आदि व्यावहारिक और मुहावरेदार वाक्यों का प्रयोग हुआ है। पद्मिनी के सौन्दर्य वर्णन और सुहाग-फूल के विश्लेषण जैसे अवसरों पर भाषा साहित्यिक होकर चित्रात्मक गति में अग्रसर होती है।'

नाटक में प्रेक्ष कहीं भी ऊब नहीं। 'हयवदन' नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

वर्षा की सुबह

- सीताकांत महापात्र

प्रश्न :-

1. 'वर्षा की सुबह' कविताओं के संकलन में संकलित कविताओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. 'जीवन बोध के साथ काव्य का गहरा सम्बन्ध है।' इस कथन को ध्यान में रख कर सीताकांत महापात्र की कविताओं की समीक्षा कीजिए।
3. 'वर्षा की सुबह' कविता संग्रह में संग्रहीत कविताओं की सामान्य विशेषताओं की समीक्षा कीजिए।
4. 'वर्षा की सुबह' में व्यक्त दार्शनिक विचारधारा पर विचार कीजिए।

प्र.1. 'वर्षा की सुबह' कविताओं के संकलन में संकलित कविताओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. कविता संग्रह
3. शीत का वर्णन
4. जीवन-बोध
5. भारतीय आचार शास्त्र के अनुसार
6. सूक्ष्म संवेदना
7. आधुनिकता का बोध
8. माधुर्य परिवेष्ठित संगीत का लक्ष्य
9. मानवीय सम्बन्धों का आकलन
10. प्रतीक विधान तथा अलंकार योजना
11. भाषा-शैली
12. उपसंहार

1. प्रस्तावना :

सीताकांत महापात्र का जन्म ओडिशा में हुआ, उड़िया उनकी मातृभाषा है। वे आधुनिक भारतीय काव्य प्रणाली में एक सफल कवि हैं। इसका प्रमाण है राष्ट्रीय स्तर के अनेक पुरस्कारों की प्राप्ति, भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार, केन्द्र साहित्य अकादमी पुरस्कार आदि।

'वर्षा की सुबह' कविता में संकलित कविताओं की संख्या 58 है। वे सब यथार्थ से जुड़ी हैं। वे जमीन के यथार्थ पर खडी हैं और आकाश के यथार्थ को इंगित करती हैं।

2. कविता संग्रह :-

इस कविता संग्रह में कविताएँ त्रिकाल ऋषि की रचनाएँ मालूम पड़ती हैं, वे भूत, वर्तमान और भविष्य को एक ही परिप्रेक्ष्य में देखती हैं। कुछ कविताएं पुराणों के आख्यानों से सम्बद्ध है। वे जीवन-बोध को विशेष गहराई प्रदान करने वाली हैं।

(क) सारी बातों के बाद

(ख) किसी आदिम युग से पृथ्वी

(ग) कहाँ गये वे लोग

(घ) यात्रा तेरी लंबी हो

(ङ) वर्षा की सुबह

(च) मृत्यु

(छ) एक किशोर की मृत्यु

(ज) चाँदनी रात में गाँव का श्मशान आदि कविताएँ

3. सीतकाल का वर्णन :-

सीताकांत महापात्र की कविताओं में सबसे अधिक सशक्त, ऊँचा एवं व्यापक स्वर है – जीवन बोध का । पेड–पौधे आदि तथाकथित पड़ पदार्थ भी अपने को और हम को, सब को एक साथ जीवन–बोध में जोड़ते हुए दिखाई देते हैं।

कहा जाता है कि दिन–प्रतिनिदन के कार्य–व्यापार, प्रकृति की अपार लीलाएँ, दिक्काल का अनंत विस्तार, हम इनमें एक साथ सुन सकते हैं – एक गहरे मानवीय राग के साथ।

प्रकृति कवि के लिए चेतना है, जानी–पहचानी है और चिर परिचित है। वह कवि की प्रत्येक भावना के साथ तदाकार होती है। वर्षा की सुबह शीर्षक में कवि भीगते हुए स्कूल जाने वाले बालक का वर्णन करते हुए अंत में जीवन और जगत के दार्शनिक स्वरूप पर अपनी बात की समापना करते हैं।

काव्य में प्रकृति–वर्णन अर्थ–ग्रहण के रूप, उद्दीपन के रूप, उपमान के रूप में, उपदेशिका के रूप में, भावनाओं की प्रतिच्छाया के रूप में कविता को विशेष आकर्षित एवं साहित्यिक सौन्दर्य से युक्त बना दिया गया है।

4. जीवन-बोध :-

इस कविता संग्रह की प्रत्येक कविता का प्राण वस्तुत: जीवन–बोध है। विशेष मुखर है – नारी–सारी बातों के बाद, हरसिंगार का स्वप्न, जाड़े की साँझ, समुद्र तट आदि। साथ ही आकाश हमें यह भी प्रेरणा देता है कि हम भी आकाश की भाँति महान और विशाल बन सकते हैं।

'चूल्हे की आग' के भावात्मक, रचनात्मक प्रयोग एवं उपयोग की शिक्षा दी जाती है। नारी वस्तुत: प्रकृति का, क्रियाशक्ति का समस्त निर्माण-विध्वंस की हेतु की प्रतीक है।

इस दुनिया को बनाने वाले शिल्पाकार अज्ञात है, परन्तु उनकी बनाई हुई दुनिया के समस्त पदार्थ चक्रवत अपने कर्तव्य का पालन करते हैं।

5. भारतीय आचारशास्त्र का ज्ञान :-

प्रत्येक बालक तीन ऋण लेकर जन्म लेता है - देव ऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण। अग्नि तथा प्राकृतिक पदार्थ देव ऋण के अन्तर्गत आते हैं। लोक-परलोक, व्यक्ति-समष्टि समस्त दृष्टियों से हमें प्रकृति के पदार्थों के दुरुपयोग से बचना चाहिए। एक अन्य जीवन पर कवि बल देता है, वह है धैर्य। धैर्य भी प्रगति के मर्गा का एक अत्यन्त महर्त्वपूर्ण सोपान है।

6. सूक्ष्म संवेदना :-

कवि प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में अपने भाव जगत को दुख-सुख के समन्वय में देखते हैं और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं। कविताओं में कवि के गहरे उद्वेगों से पूरित बाणी उभर कर आती है।

7. आधुनिकता का बोध :-

इस कविताओं के माध्यम से कवि ने जीवन की गहराइयों में प्रेवेश किया है और उनके भीतर जीवन के सत्य को खोजने का प्रयास किया है। कवि एक रागात्मक सम्बन्ध का अनुभव करते हैं।

सृष्टि के आदि, मध्य और अंत मन का संकल्प मात्र है। नरक और स्वर्ग कुछ इसी पर, यहीं है। यह जीवन वास्तविक और आश्वस्तकारी है। ये कविताएँ में मानव जीवन के वास्तविक विस्तार से आधुनिक बोध कराती है।

8. माधुर्य परिवेष्ठित संगति का लक्ष्य :-

संगति मानव हृदय को द्रवीभूत करने वाला एक महत्वपूर्ण है। कविता की पंक्तियों में संगीत के माधुर्य की अविच्छिन धारा प्रच्छन्न रूप से व्याप्त दिखाई देती है। जीवन को कुरुक्षेत्र का प्रतीक मानना और उसमें जीवन के समस्त सुखात्मक और दुखात्मक भावों की अनुभूति का ऐहसास-सचमुच एक बहुत ही सूक्ष्म संगीतज्ञ की परिकल्पना है।

9. मानवीय सम्बन्धों का आकलन :-

गलत पते की चिट्ठी, आधीरात, स्वर, जाडे की साँझ, समुद्र तट, चूभ हे की आग आदि कविताओं में मानवीय सम्बन्धों के प्रतिउन्मुख तथा आकलन भी करती है।

न जाने किस अंतकाल से
जलाए बैठे हैं अपना चूल्हा सूर्यदेव
बेसुध गहरे ठिठुरन-भरे अन्धेरे में
वहीं सी रती-सी आग ले
माँ वसुधा ने
उपजाएँ हैं कितने स्नेह से, चाह से
पहाड, नदी, पहला जीवन स्पन्दन
महाद्रुम, पशु-पक्षी, मनुष्य, गुल्म, लताएँ।

– चूल्हे की आग

10. प्रतीक विधान तथा अलंकार योजना :-

वर्षा की सुबह कविताओं में प्रतीक-विधान एवं अलंकार योजना का सफलता पूर्वक निर्वाह हुआ है।

आ जाता है खुद ही पकड में स्वप्न
राह भूली ततली-सा
एकाकी बदशरी लग्न में
कुछ सोच उठ खडी होती हो तुम
करती हो इस्त्री पोशाक मेरी
टाँग देती हो उसे। – वर्षा की सुबह

11. भाषा शैली :-

वर्षा की सुबह कविताओं की भाषा सहज और सामान्य होते हुए भी अनछुई कल्पनाओं और मौलिक चिन्तन से प्रसूत होने के कारण किसी सीमा तक असामान्य बन गई है। इन कविताओं में कवि

में भाषा के प्रति अकुण्ठित तीखी तृष्णा दिखाई देती है।

उदा : जहाँ आसन्न संध्या के जंगल किनारे
मतवाली हवा का एक सुलु-सुलु गीत
रह-रह कर सुनाई देता है।

12. उपसंहार :-

वर्षा की सुबह कविताएँ जीवन-बोध से जुडी हुई हैं। सारी बातों के बाद, किस आदिम युग से पृथ्वी, कहाँ गये वे लोग, यात्रा तेरी लम्बी हो- आदि कविताओं में अपूर्व जीवन-बोध का एहसास प्राप्त होता है। मृत्यु इस जीवन को पूर्णता प्रदान करके का काम करती है। विविध कविताओं के आकलन द्वारा लगता है कि मृत्यु लम्बी छुट्टी पर हैं। मृत्यु का स्वागत करते हुए कवि कहते हैं -

आना हो तो आओ
क्या मालूम नहीं तुम्हे
उन्मुख हूँ मैं हमेशा से
आओ, आकर बैठो मेरे पास ।

× × ×

क्या तुम्हें नहीं मालूम
मैं हूँ तुम्हारी प्रतीक्षा में
आँखे खुली हैं जिस दिन से?

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र.2. ''जीवन बोध के साथ काव्य का गहरा सम्बन्ध है।'' इस कथन को ध्यान में रखकर सीताकांत महापात्र कविताओं की समीक्षा कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

जीवन और जगत तथा उसमें घटने वाली घटनाओं के प्रति जागरूकता जीवन-बोध है । जीवन बोध हमें इनके प्रति सजग भी करता है और अपने कर्त्तव्य-पालन के प्रति जागरूक भी करता है । सीताकांत महापात्र व्यक्तिगत जीवन तथा समष्टि में में घटित होने वाली प्रत्येक घटना के पार देखकर उसमें निहित संदेश देते है। पेड़ पौधों के वर्णनों के माध्यम से वह स्वयं भी जीवन-बोध से जुड़ते हैं और पाठक के जीवन-बोध को गहराने का प्रयत्न भी करते देख जाते हैं।

2. चाँदनी रात :-

चाँदनी रात में वह प्रकृति के सौंदर्य के परिप्रेक्ष्य में महुए के पेड़ों की शोभा तो देखते ही हैं उनके सामान्य उपयोग की भी कहते हैं कि वे अल्प हानियों को बिजूखे की तरह खेतों से दूर रखने का भी काम करते हैं। इसके आगे बढ़ कर वह पाठक को सुनाते हैं, उनका संदेश । फूल और शब्द वापस लौट कर नहीं आते हैं। फूलों की शोभा टहनी पर लगे रहने में सुरक्षित रहती है, शब्दों का महत्त्व सार्थक रूप में अभिव्यक्त होने में है, यथा -

तू जानती है
आँखों से आँसू पौंछने पर
आँसू फिर उमड़ पड़ेंगे
टहनी से फूल झर जाने पर
होंठ से कोई बात उड़ जाने पर
टहनी पर, होंट फर कभी नहीं लौटेंगे। (सारी बातों के बाद)

इस कविता के अंतिम चरण में कवि प्रकृति के साथ जुड़े रहते हैं, अत: प्रकृति उनसे सीधे-सादे बतियाती है। अनेक अनुत्तरित प्रश्नों के समाधान हमें उनके पास-आदिवासियों के पास जाने पर प्राप्त हो जायेंगे -

कौन से प्रश्न किससे लिए
भला कौन देगा उत्तर
दर्मू या दर्तनी या देवता दिशारी ? (सारी बातों के बाद)

3. सारी बातों के बाद :-

'सारी बातों के बाद' कविता की इन पंक्तियों में दर्मू का अर्थ है आदिवासियों के आकाश में रहने वाले देवता, दर्तनी का अर्थ है आदिवासियों की धरती माँ तथा देवता दिशारी का अर्थ है आदिवासियों के पुजारी । सायं की शोभा बताती है कि चन्द्रोदय एवं सूर्योदय के समान तुम्हारे जीवन में भी प्रत्येक सुखदायी सम्भावनायें उपलब्ध हैं –

देखो नजरें उठाकर चारों और है
स्वप्न और सम्भावनाओं की
प्रीति और प्रतीति की
असंख्य आरक्त करबी (सांझ)

4. सुरजमुखी :-

'सूरजमुखी' शीर्षक कविता प्रकृति को मानव के सच्चे मित्र के रूप में चित्रित करती है। वह मनुष्य को कभी नहीं भूलती है। बशर्ते व्यक्ति को जीवन में उसके योगदान के महत्त्व का बोध बना रहे –

फिर जब कभी तुम
बिस्तर पर पड़े होगे
उठने की ताकत तक नहीं होगी
सूरजमुखी से मेरी ओर ताक रहे होगे तुम

यह कविता हमें जीवन में अपने मित्रों के प्रति कर्त्तव्य का बोध कितने सूक्ष्म स्तर पर कराती है। जिसे हम भूल जाएँ एवं विपत्ति के समय बिन बुलाये ही न पहुँच जाएँ, वह हमारा मित्र क्यों कर और कैसा मित्र?

हम जीवन भर उसे भोजते हैं जिसने हमको बनाया और दुनिया को बनाया। इतना ही नहीं, जो सबको अपने-अपने काम में लगाए रहता है।

प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहहिं सुख कहईं।

परन्तु साथ ही यह भी कह देते हैं कि जड़मति प्राणी ताड़ना के अधिकारी हैं।

ढ़ोल गबाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताडना के अधिकारी॥

(दोहा सं.59 सुन्दर काण्ड, राम चरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास)

इस तथ्य को कवि सीताकांत अधिक सार्थक शैली में, जीवन बोध के संदर्भ में लट्टू को लक्ष्य करके कहते हैं –

कहाँ गया वह बालक जिसने डोरी के सहारे मुझे घुमाया है
कहाँ गया वह लट्टू चलाकर
हो गया अन्तर्धान किस ओर
वह चंचल बालक। (लट्टू)

4. लट्टू :

जीवन क्या है? इसका क्या उद्देश्य है? इसका अन्त कौन करता है ? अंत होने पर इसकी गति कहाँ चली जाती है, अथवा उसको कौन ले जाता है? इन समस्त प्रश्नों को लेकर प्राणी दु:खी होता रहता है और जीवन के दिगन पूरे करता रहता है। सुबह होती है, शाम होती है। उम्र यों ही तमाम होती है। 'लट्टू' कविता का अंतिम छन्द जीवन की प्रश्नों भरी स्थिति का बोध करने को बैचेन बनाए रखता है –

नहीं आता वह
दिन बीत जाता है, रात बीत जाती है
लट्टू घूमता है
वह पुराना लट्टू सिर्फ रोता है और
रोते हुए घूमता है। (लट्टू)

एक कवि का कर्त्तव्य है अपने परिवेश को वाणी प्रदान करना जिससे अन्य प्राणी सह धर्मिता और सहभागिता को बोध प्राप्त कर सकें। कवि यदि ऐसा कर लेता है, तो इस से अधिक क्या करने की क्षमता की चाह वह क्यों करे? सीताकांत कहते हैं –

रोया हूँ, रूठा हूँ
उच्चाटित हुआ हूँ, खुद को खो दिया है

× × ×

अंधेरे में ढूँढ़ते टटोलते

जितना समझा, जितना हो सका

काँपती उँगलियों से जोड़ा है शब्दों को

सौंप दिया है नीली सरस्वती को

× × ×

तुम्हारे ही अंदर मैंने भी उसको

फिर एक बार सुमिरा है (इससे बढ़कर भला और क्या?)

5. किस आदिम युग से पृथ्वी :-

सृष्टि के आदि, अंत और प्रयोजन के सम्बन्ध में जानने की इच्छा मानव के जीवन-बोध किस प्रकार गरहाती है, इसकी तसवीर हमें 'किस आदिम युग से पृथ्वी' शीर्षक कविता में देखने को मिलती है। पृथ्वी पर स्थित जीवन अनादि और अनंत है। उस का आदि, मध्य और अंत मन की संकल्पना मात्र है। नरक और स्वर्ग सब कुछ इसी पर, यहीं है। यह जीवन कितना वास्तविक है, साथ ही कितना आश्वस्तकारी, देखिये कवि सीताकांत क्या कहते हैं -

किस आदिम युग से, पृथ्वी

किस अनजान लग्न से

यह सारा कुछ पसारे बैठी हो मोहिनी

सिर्फ मेरे लिए? (किस आदिम युग से पृथ्वी)

6. रहस्यवादी दृष्टिकोणः- 'कहाँ गए वे लोग' शीर्षक कविता में की जाने वाली जिज्ञासाएँ कवि की वाणी में रहस्यवाद की गंध भरती हुई दिखाई देता हैं। परन्तु इसके साथ ही कवि धरती से, यथार्थ सें जुड़ने की याद हमें बार-बार दिलाता है। अन्तरिक्ष-यात्रा में हम यदि कहीं अपनी जमीन को भुला बैठे, तो हमारी स्थिति कैसी कुछ हो जायेगी।

चाँद और मंगल में जाने की तैयारी में

पैर-तले की माटी माँ का स्पर्श भूल

कागज, प्लास्टिक चबाते सारे बिजू के

भर रहे हैं खर्राटे दोपहरी में,

जीवन का वास्तविक स्वरूप यह है कि स्वप्न उनके साकार होते हैं जो सर्वथा निष्पाप हैं, निस्वार्थ जीवन व्यतीत करते हैं । कवि उनको खोजता है, हम भी उनको खोजें –

पर

कहाँ गये वे लोग

सपना देखने में सक्षम

वे निरीह लोग ? (कहाँ गए वे लोग)

7. अवांछित :-

इस दुनिया में न कुछ अवांछित है और न कुछ भी अनावश्यक । प्रत्येक वस्तु का उपयोग वस्तु और व्यक्ति के पास कुछ–न–कुछ देने के लिए है। यदि हम यह तथ्य समझ सकें, तो जीवन और जगत से बहुत प्राप्त करके अपने को कहीं अधिक समृद्ध बना सकते हैं। इसी को लक्ष्य करके ऋषि ने कहा था – न कोई दोस्त है, न कोई दुश्मन। सब गुरु हैं, क्योंकि हरेक के पास सिखाने के लिए, देने के लिए कुछ न कुछ है। निष्कर्षत: हम न अपने को अवांछित समझें और न किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति को ही अवांछित अथवा हीन समझें। जीवन के इस बोध के कवि ने एक से अधिक उदाहरण देकर अभिव्यक्त किया है। पहाड़ पर पड़ा हुआ पत्थर ऊपर से देखने में सर्वथा अनुपयोगी लगता है। कुछ लोग ऐसी भी हो सकते हैं जो उसे अवांछित मानते हों, क्योंकि वह जलधारा को कहीं बाधित करता है, कहीं मोड़ देता है और कभी–कभी जनता के मार्ग में बाधक बन जाता है। परन्तु, दूरगामी द्रष्टा, व्यापक चेतना का धारणकर्त्ता देखता है कि जलधारा के थपड़ों से अपने को रेत के कणों में परिवर्तित कर देने वाला वह शिलाखंड अपने को कितना उपयोगी सिद्ध करता है। उसके उपयोगकर्त्ता मानोरेतरूप में उस निर्जीव अवांछित कहे जाने वाले पत्थर की उत्सुकता पूर्वक बाट जोहते रहते हैं, जिस प्रकार कृषक , भ्रमर और तृषित जीवन एवं पृथ्वी वर्षा के जल की प्रतीक्षा करते हैं। किन्तु वह खुद को समझता है अवांछित। गाँव के बच्चे–बच्चियाँ उससे बने हुए रेत को कितने प्रेम से ग्रहण करते हैं। वे उससे कभी घरौंदे बनाते हैं और उसके मुलायम बिस्तर पर चाँदनी रात में लेटकर उन्मुक्त का आनन्द लेते हैं, उसके लिए उत्सुक एवं लालायित बने रहते हैं; यथा –

न जाने किस सुदूर नदी किनारे गाँव में
एक लाड़ली बच्ची ताक रही है राह उसकी
किस दिन लुढ़कते लुढ़कते रेत बन
पहुँचेगा वह उसके गाँव किनारे
जिससे वह घरौंदा बनाएगी।

पेड़ से झड़ता हुआ सूखा पीला पत्ता प्राय: अनावश्यक समझा जाता है। लोग उसको जल्दी बुहार कर एक ओर फेंक देना चाहते हैं। परन्तु हम लोग भूल जाते हैं कि वे सूखे पत्ते हमारे लिए कितने जीवनदायक हैं। वे जमीन के लिए उपयोगी खाद का काम करते हैं और बीज प्रदान करके नए हरे भरे लता-गुल्म प्रदान करते हैं -

इसी प्रकार शुष्क एवं निर्जीव प्रतीत होने वाले बीज की उपयोगिता पर कवि प्रकाश डालता है और जीवन-बोध को एक नया आयाम देता हुआ कहता है कि हम और तुम कोई भी अपने को अवांछित न समझें। भौतिक एवं बाह्य तुच्छता प्राय: हमें हीनत्व भाव द्वारा अभिशप्त बना देती है। हमारे भीतर भी वही जीवनी शक्ति, जीवन-प्रदायिनी शक्ति निहित है, जो वृहदाकार एवं अत्यधिक आकर्षक वस्तुओं एवं आकर्षक व्यक्तियों में रहती है। वह भूल जाता है कि पृथ्वी की गर्मी, खाद की गर्मी उसके भीतर निहित वृक्ष को अंकुरित करके प्रस्फुटित करेगी, तब वह सिर ऊँचा किए, कलिल कोपलों का मुड़ासा बाँधे सबके आकर्षण का केन्द्र बन जायेगा।

और वह शुष्क निर्जीव बीज
सूख-सूखकर निस्तेज हो
राह जोहता है आसन्न मृत्यु की
सोचता है उसके अवांछितपन का अंत हो
समझ नहीं पाता है कौन-सा मृत्युहीन स्वप्न
जाग रहा है, स्वप्न देख रहा है उसी के अन्दर

(अवांछित)

8. श्मशान, और वह भी गाँव का श्मशान, उससे अधिक सूनी, भयावह और अवांछित जगह कौन-सी होगी? परन्तु वहाँ जाते समय 'रामनाम सत्य है' की आवाजें लगाई जाती हैं, 'साधो यही है वृन्दावन' का घोष किया जाता है और वहाँ पहुँचने पर अध्यात्म एवं जीवन-जगत की निस्सारता की गम्भीर चर्चा की जाती है। तब हमें जीवन का यह बोध होता है कि जीवन का वास्तविक सत्य श्मशान, जो हमें बैकुठ की अनुभूति कराता है ; यथा -

फिर छिन में
देखते-देखते लगेगा
यही तो है बैकुंठ
देव, देवी, अप्सरा, रंभा, मेनका, उर्वशी और
ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, चन्द्र, स्वयं विष्णु
स्वर चित माया, सुरभित चाँदनी में। (चाँदनी में गाँव का श्मशान)

9. **जीवन का यथार्थ :-** ''यात्रा तेरी लम्बी हो'' शीर्षक कविता में कवि जीवन के यथार्थ को रूपायित करता है और इंगित करता है कि हम जीवन को जीते समय वास्तविकता से दो-चार होना, रूब-रूब होनी शीखें । दुनिया एक धोखा है - स्वर्ण मृग की तरह आकर्षक धोखा है। परन्तु सब कुछ जानते हुए भी हम इसके पीछे भागते हैं। यदि न भागों तो करें भी क्या? यदि स्वर्ण-मृग की प्राप्ति हमारी महत्त्वाकांक्षाएँ नहीं होंगी, तो फिर हम आगे क्यों कर बढ़ेंगे ? मृग-तृष्णाएँ ही वस्तुत: हमारे लिए प्रगति का मार्ग खोलती हैं, कम के कम उस ओर जाने की प्रेरणा तो प्रदान करती ही हैं -

मायावी मृग से बढ़कर सच
हमारे नसीब में नहीं होता
धनुष बाण लिए उसी स्वर्ण
मृग के पीछे ही दौड़ना। (यात्रा तेरी लंबी हो)

स्वर्ण-मृग वाला स्वप्न सम्भवत: इस जन्म में साकार न हो सके, सम्भवत: स्वर्ण-मृग कवि की कल्पना मात्र हो। परन्तु यही कहा जायेगा कि यह स्वप्न अथवा मात्र कवि की कल्पना अपना महत्त्व तो रखती ही है। ऐसे स्वप्न न होने पर, ऐसी कल्पनाओं के प्रति हृदय न रखने की स्थिति में कोई व्यक्ति आकांक्षाओं को पूरा करने की ओर अग्रसर नहीं होता।

आगे कवि गीत में कहता है कि आकांक्षाओं की पूर्ति के मार्ग में उनके बाधाएँ आती है। उस धन्यानपूर्वक देखना, उन्हीं में तुझे उन बाधाओं का गुरु मंत्र प्राप्त हो जायेगा। विजय मंत्र तो वस्तुतः हमारे-तुम्हीं वह बाधाओं को पार कर जाता है -

रास्ते में मिलेगी वही राक्षसी बुढ़िया

× × ×

हमारी-आपकी सबकी आत्मा इनके प्रति हमें सावधान करती रहती है। यदि हम उसकी सुन सकें, तो आगे बढ़ते चले जायेंगे। अपने वांछित महान लक्ष्य की ओर ले जाने वाले जीने के सोपानों पर चढ़ते चले जाएँगे। कवि सीताकांत इस तथ्य को कितनी सहजता से व्यक्त करते हैं -

अंदर से सुनाई देगा एक स्वर

नहीं, यह नहीं, यह नहीं,

फिर तू आगे बढ़ता जायेगा

जी जान से भागेगा।

मार्ग के प्रति अनेक सूत्र बताता हुआ कवि कहते हैं - जो कडुए-मीठे अनुभव हों, स्वीकार करे रहना चाहिए। बात पीछे पश्चाताप मत करना। अंत में कवि जीवन के इस कठोर एवं अप्रिय सत्य का उद्‌घाटन करता है कि स्वर्ण-मृग भौतिक समृद्धियों का परिणाम सिवाय पश्चाताप के और कुछ नहीं हो सकता है -

अमृत हो, हलाहल हो

चख लेना, पी लेना

जीवन का यथार्थ बोध यही है - भौतिक पदार्थों की निरसारता। किंग सोलोमन ने इसका अनुभव किया था। महान सिकन्दर ने इसको देखा था। श्रीराम ने इसकी लीला की। अपनी नासमझी पर उन्हीं क्षोभपूर्ण आत्मग्लानि हुई। कवि सीताकांत का निष्कर्ष स्पष्ट है । जब भाग-दौड़ का अंत होता हुआ नहीं दिखाई देता है, तब सझ में आता है, जीवन सिवाय पश्चाताप के अन्य कु भी नहीं है -

जिस सपने के लिए

रात कम पड़ गई

उस दिन समझेगा सारा जीवन

असंख्य पश्चातापों के सिवा

और है ही क्या । (यात्रा तेरी लम्बी हो)

उपसंहार :-

कवि सीताकांत ने जड़, चेतन, पौराणिक आख्यान, प्रकृति, मानवीय सम्बन्ध आदि दृश्यमान जगत के कण-कण द्वारा हमें जीवन बोध से जोड़ने का सफल प्रयत्न किया है। कौरव सभा में द्रौपदी के वस्त्र जीवन-बोध शासक वृन्द की कार्यवाही शब्द जाल तक सीमित रहती है। बाग्जल द्वारा वे चिरकाल तक उसकी रक्षा करते रहते हैं -

न खत्म होता है शब्दों का अथाह वस्त्र

न स्फुरित होती है नि: शबब्द निर्वस्तत्र सत्ता

पर्त-दर-पर्त ढके रहता है छल चिरकाल (वस्त्र-हरण)

जीवन-बोध से जोड़ना कवि का वास्तविक यथार्थ है। वह जानता है कि जीवन-बोध से विमुख होना बुद्धि-विपर्यय एवं विनाशोन्मुख गति का सूचक है।

पेड़ पौधे आदि प्रकृति के पदार्थ ही वस्तुत: हमारे जीवन के सर्वस्व हैं ;

जीवन का सत्य यही है कि हम हमेशा से पेड़ पौधों के बीच रहै हैं और आगे भी रहेंगे। उनके बीच रहते हुए हमारे सुख-दुख आते जाते रहते हैं।

इसी जीवन के मध्य मनुष्य नई-नई बातें जानना एवं प्राप्त करना चाहता है और इन्हीं के फे र में उल्लसित और उदास होता आया है, कला-कृतियों के उपादान कारण एवं निमित्त कारण इस प्रकृति से ही पेड़ पौधों से ही, प्राप्त होते हैं। कवि का अंतिम छंद, वस्तुत: इसी वास्तविकता के प्रति उसका समर्पण भी है, उसकी कृतज्ञता का ज्ञापन भी है यथा -

उनकी अदमम्य अभिलाषा देखी है

तुम्हारे ही अन्दर मैंने उसको

फिर एक बार सुमिरा है

× × ×

मनुष्य के उच्चारण की

क्षीण दीपशिखा की

जलने की वह कोशिश देखी है।

इससे बढ़ कर प्रिय पाठक

भला और क्या

चाहेगा एक कवि ?

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र 3. 'वर्षा की सुबह' कविता संग्रह में संग्रहीत कविताओं की सामान्य विशेषताओं की समीक्षा कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

'वर्षा की सुबह' में संग्रहीत कविताओं के कवि हैं। सीताकांत महापात्र। उनका गहरा जीवन-बोध संग्रह की प्राय: प्रत्येक कविता में झांकता हुआ दीखता है। इन कविताओं में जीवन-बोध की प्रच्छन धारा अविच्छिन्न रूप से व्याप्त दिखाई देती है। इसके कारण ये समस्त रचनाएँ जीवंत प्रतीत होती हैं। इसी के अनुरूप इन कविताओं के लक्ष्य और शिल्प हैं।

पुस्तक में संग्रहीत कविताओं के सामान्य परिचय के अन्तर्गत कहा गया है कि गहरे उद्वेगों, सूक्ष्म संवेदनों और शब्दों के माधुर्य तथा संगीत से फूलती हैं सीताकांत महापात्र की कविताएँ। दिन-प्रतिदिन के कार्य-व्यापार, प्रकृति की अपार लीलाएँ, दिक्काल का अनंत विस्तार-हम इन में एक गहरे मानवीय राग के साथ देख-सुन सकते हैं। इनमें वर्तमान में खड़े होकर बहुत पीछे लौटना भी है तथा बहुत आगे देखना भी । समुद्र, आकाश, धरती, सूरज, चन्द्रमा, दूब, पेड़-पौधे, फल-फूल, पशु-पक्षी, ऋतु चक्र हमें जिस जीवन-बोध को न तो परास्त कर पाती है न ही भयभीत। इस संग्रह की कविताओं में पुराणों-आख्यानों के प्रसंग भी इस जीवन बोध को और गहरा करने के लिए ही हैं। कविताओं में मानवीय सम्बन्धों का भी एक विशिष्ट आकलन है, जो जीवन-संग्राम के ऐन बीच हमें गहरी मानवीय भरोसे, विश्वास संबल की सी प्रतीति कराता है। कवि संवेदना की व्याप्ति निकट-से निकट और दूर से दूर की चीजों पर कुछ तरह से है कि हम एक यात्रा पर होने का अनुभव करते हैं - ऐसी यात्रा जो आदि-अंत हीन लगती है, पर जिस कविता पड़ाव ''शून्यता भी शबब्दों की स्नेह श्रद्धांजलि'' बन जाते हैं। और बन जाते हैं कि एक ऐसा उपक्रम जहाँ हमारा काम है केवल जोड़ते चले जाना सान्त्वना भरे सरल शब्द ..... आदि। इस दृष्टि से वर्षा की सुबह की कविताओं की विवेचना बहुत कुछ इस प्रकार होगी -

2. सूक्ष्म-संवेदना :-

यह विशेषता प्राय: प्रत्येक कविता में पायी जाती है। कवि पप्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में अपने भाव जगत को दुख-सुख के जोड़े को देखता है और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करता हुआ दिखाई देता है। हम पहली कविता आकाश ही को लेते हैं। कवि पृथ्वी के पेड़-पौधे, खेत, घर-द्वार, प्रत्येक वस्तु को आकाश के संदर्भ में देखता है। वह कवि को कभी थका हुआ पथिक दिखाई देता है और कभी एक उतावला प्रेमी। संवेदना की सूक्ष्मता की चरमावस्था तब सामने आती है जब शून्य एकान्त में खड़े

ताड़ वृक्ष को माँ यशोदा बन कर बालकृष्ण की भाँति स्नेह पाश में बाँधता है। वह एक मनोहर कल्पना है –

उसी पर कभी एक थके–हारे पथिक–सा
कभी उतावले प्रेमी–सा
झुका होता है जो
उसी का नाम है आकाश। (आकाश)

इसी के साथ कवि इतने विशाल हृदय वाला आकाश बनने की कल्पना करने लगता है – बनूँगा नहीं क्या मैं कभी आकाश ?

सागर की अनंतता और उस अनंतता की मर्यादा की रक्षा करते हुए सागर पर ऋषि मोहित हुए थे, उसको रत्नाकर नाम दिया और देखा कि विश्व की सम्पदा को धारण करने वाला सागर देने के लिए सदैव व्याकुल बना रहता है । ऐसे सागर पर ज्ञानष्टा ऋषि का मोहित होना सर्वथा स्वाभाविक है।

जिस वस्तु को सागर देता है, उसकी ओर भूल कर भी नहीं देखता है –

पर नहीं देखता समुद्र
भूल से भी उस सीपी की ओर
फेंक चुका होता है उसे
अपने तट पर रेतीले विस्तार में। (समुद्र की भूल)

यहाँ विस्तार शब्द कवि की सूक्ष्म पैठ का परिचायक है।

'दिन' शीर्षक कविता के अन्तर्गत कवि सायंकालीन उदासी का चित्र अत्यन्त सूक्ष्म संवेदनापूर्ण करता है –

जाता है चला जाता है दिन
डूबते सूर्य के साथ,
खो जाता है
घर लौटती चिड़ियों के पंखों में,
चुप हो जाता, ठिठक जाता है
हवा की बोझिल सांसों में,

वर्षा की सुबह : सीताकान्त महापात्र :-

कुछ कविताओं में कवि के गहरे उद्वेगों से पूरित वाणी उभर कर आ जाती है। 'उठकर चल दिए तुम' शीर्षक कविता में कवि प्रियतम से बिछुड़ने पर अपना उद्वेग करता है। उसका प्रियतम- रहस्यात्मक प्रियतम है, जिसकी छाया पाने को वह बेचैन दिखाई देता है।

3. मानवीय राग :-

कवि सीताकांत की कविताओं के बारे में कहा जाता है कि **दिन-प्रतिदिन के काव्य-व्यापार, प्रकृति की उपार लीलाएँ, दिक्काल का अनंत विस्तार, हम इनमें एक साथ सुन सकते हैं - एक गहरे मानवीय राग के साथ ।** इन समस्त बातों को सीताकांत की अधिकांश कविताओं में देखा और सुना जा सकता है। कारण है - प्रकृति कवि के लिए चेतन है, जानी-पहचानी है, चिर परिचित है। वह कवि की प्रत्येक भावना के साथ तदाकार है। वर्षा की सुबह शीर्षक में कवि भीगते हुए स्कूल जाने वाले बालक का वर्णन करता हुआ अंत में जीवन और जगत के दार्शनिक स्वरूप पर अपनी बात का समापन करता है -

आज जाता है खुद ही पकड़ में स्वप्न
राह-भूली तितली-सा

× × ×

टाँग देती हो पोशाक मेरी
मानो अगले जन्म के लिए

× × ×

किसी धुले-उजले कंकाल सी ।

व्यथित, दुखित नारी हमारे जीवन का एक अभिशप्त एवं आवश्यक अंग है। उसके चित्रण में कवि की यह कल्पना सर्वथा अभिनव है। दिन-प्रति घटिता होने वाला एक विशेष प्रकार का राग उत्पन्न करने वाला है -

न जाने कितनी स्मृतियों के शव
कितनी आशाओं, कामनाओं के फूल
ढो लाती है वह कछुए-सी।

और इसी के साथ प्रस्तुत हैं उसके दोनों स्वरूप विष कन्या, कामिनी और जीवन प्रदायिनी ममतामयी माता यथा –

एक हाथ में है उसके निद्रादायी हालाहल
दूसरे में उज्जीवन, नील–स्वप्न का भ्रूण
वह है सारा इहलोक, परलोक
मृत्यु और फागुन। (नारी)

'सूरजमखी' शीर्षक कविता मं कवि दार्जिलिंग टाइगर हिल पर घटित एक सामान्य घटना को अत्यन्त संवेदनापूर्ण ढंग से वर्णित करता है। दो पंक्तियाँ लिखकर वह वर्णन को अध्यात्म द्वारा पेर्यवेष्ठित कर देता है –

सूरजमुखी–से मेरी ओर ताक रहे होगे तुम
आसन्न अँधेरे से।

लट्टू शीर्षक कविता में कवि बालकों द्वारा घुमाए जाने वाला साधारण लट्टू को लेकर चलता है और उसे विश्व का प्रतीक मानकर उसके चालक की खोज में मग्न हो जाते है। लट्टू दिन प्रतिदिन की एक सामान्य घटना है और विश्व–प्रपंच के रचयिता एवं उसके पति जिज्ञासा भी असमान्य जन के मध्य घटित एक सामान्य घटना है। उसको जिज्ञासापूर्ण भावुकता से जोड़ कर कवि रहस्यमयी वाणी बोलने लग जाता है। जगत–बोध से नागदा घाट के प्रति उन्मुख हो जाता है। जगत् बोध और आत्म–बोध के मध्य खाई को ज्ञानियों ने भले ही चौड़ा किया हो, परन्तु सीताकांत सदृश भावुक कवियों ने कभी भी इसकी परवाह नहीं की, यथा –

विशाल शून्यता में, अँधेरे में,
कहीं जो नहीं होता कोई
सिर्फ सुन पड़ती है
सन्नाटे की बर्राहट और सांय–सांय
कहाँ गया वह लट्टू चलाकर
हो गया अन्तर्धान किस ओर
वह चंचल बालक।

और अन्तत –

लट्टू घूमता है,

वह पुराना लट्टू सिर्फ रोता है और

रोते हुए घूमता है।

'दूब' हमारे जीवन की एक अति सामान्य वस्तु है। उसको उखाड़ दिया जाय, परन्तु वह पुनः खड़ी हो जाती है। उस पर सीमेण्ट कर दिया जाए, परन्तु वह दरार बनाकर झाँकने लगती है। ऐसी वस्तु का वर्णन दूब शीर्षक कविता में सीताकांत करते हैं। यहाँ भी जीवन की संवेदना से उसे जोड़ कर देखते हैं और उसमें अनेक अनकही बातें पढ़ लेते हैं।

जन्म, मरण, विवाहदि मंगल अवसरों पर दूब का प्रयोग किया जाता है। पर क्या हमने कभी कवि की आँखों से उसके भीतर स्थित मादकता, जीवन की समग्रता को समाहित देखने का प्रयत्न किया है। अब देखिए कवि सीताकांत की आँखों से, और सुनिए भी उन्हीं के जैसे कानों से –

दूब दूब

क्षुधा, तृणा, प्रतीक्षा का अंतहीन उनींदा प्रहर

साथ–साथ भोगा है हमने

साथ–साथ रमे हैं

सखी मेरे प्राणों की अपनी।

अवांछित शीर्षक कविता में पत्थर की रेत पर पेड़ के सूखे पत्ते जैसे व्यर्थ समझी जाने वस्तुओं को लेकर देखता है कि वे कितनी उपयोगी हैं। उनका उपयोग तो हम करते हैं, परन्तु कृतज्ञतापूर्वक नहीं। प्रकृति से परिचय न मालूम कितना पुराना है? 'श्मशान' और फिर गाँव का श्मशान, कितना अग्राह्य होता है। वहाँ कोई नहीं जाना चाहता है, वहाँ ठहर कर किसी प्रकार मन रमाने का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। परन्तु हमारा कवि सीताकांत वहाँ भी प्रकृति की मनोमुग्धकारी लीला और झाँकी के दर्शन कर लेता है। वह वहाँ चाँद को बातें करते हुए सुनता है, कृष्ण को कहीं दूर बाँसुरी बजाते सुनता है, कभी वह वहाँ प्रेतात्माओं, परछाइयों के आवागमन की आहट सुनता है और कभी ऐसी व्यक्ति को सुबोधित करता है, जो अपना सर्वस्व छोड़ कर वहाँ आया है – वहाँ तो सभी ऐसे ही रूप में आते हैं। इसके साथ ही वह 'राम नाम सत्य' की आवाजों के पीछे झाँकते हुए सत्य को झाँकते हुए समझ जाता है –

अपना एकमात्र सत्य है अब सामने

एक ही दिगंत। (चाँदनी में गाँव का श्मशान)

खून की गरमी से लेकर अत्याचारी के क्रोध में और अन्ततः ओंकार का जय करने वाले ऋषि के उत्साह में जो गर्मी है – वह सब सूर्य से ही तो प्राप्त है। इतनी गहन, सहज और अतलदर्शी अनुभूति वस्तुतः कवि की मार्मिक दृष्टि का सहज प्रमाण है – उसकी संवेदना वस्तुतः लोकव्यापी है, उसके प्रत्येक वर्णन के साथ मानवीय राग का प्रच्छेद्य सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है।

ट्रेन–यात्रा जैसी साधारण घटना को कवि जीवन यात्रा से झट जोड़ देता है और वह जीवन को अनेक जीवनों की श्रृंखला के रूप में देखने लगता है। स्टेशनों पर ट्रेन के रुकने को वह ट्रेन का साँस लेना, सुस्ताना बता देता है और इस प्रकार हमारे जीवन में जड़ ट्रेन एक सचेतन हस्ती बन जाती है।

जिस प्रकार प्रत्येक जन्म में जीव अपरिचितों के मध्य पहुँच जाता है, उसी प्रकार ट्रेन प्रतिक्षण, प्रतिपल गाँवों के मध्य दौड़ती चली जाती है और अंत में कवि जीवन की भाँति ट्रेन को भी स्वप्न बता देता है, यथा –

पर इतने में सपना टूट जाता है

भूत लगी ट्रेन

दौड़ी चली जा रही है

न जाने कहाँ ! (ट्रेन में सुबह)

हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है और हम उसकी पूर्ति हेतु कहाँ और किधर जा रहे हैं – कोई नहीं जानता। 'गरमी की शाम का दृश्य' शीर्षक कविता में कवि एक अंधे चरवाहे युवक को सूरज से बातें करते हुए दिखाता है और फिर सुनसान आकाश के तारों में उसकी आँखों में झलकते हुए आँसुओं की बूँदों को देखने लगता है, यथा –

सुनसान आकाश में तारे रह–रह कर

उसी की आँखों के आँसू की बूँदों की तरह

झिलमिलाते हैं। (गरमी की शम का दृश्य)

'एक सितारवादिका के लिए' शीर्षक कविता में भी कवि इहलोक और परलोक को, जमीन और आसमान को अद्वैत रूप में देखने का प्रयत्न करता है –

विलम्बित स्वर हंस बन बह जाता है

सूर्यहीन अतल नदी में।

केंकड़े से लेकर रत्नों के धारण करने वाले समुद्र की मर्यादा एवं दान शीलता सर्वथा स्मरणीय हैं। वह सबको नित्य नई प्रेरणा देता है, क्योंकि प्रगति और विकास की सीमाओं की हयन्ता नहीं है।

अंत में हम देखते हैं कविता शीर्षक 'चूल्हे की आग'। चूल्हे की आग अनन्त काल से जल रही है। यह आग कहाँ से आई? इसे कौन लाया ? इसके कितने अगणित रूप और उपयोग हैं? इन सब प्रश्नों का उत्तर कौन देगा? कवि का एक ही परामर्श है। इतनी महत् उपयोगी अग्नि का हम दुरुपयोग न करें? उसके निर्माणकारी रूप को विनाशकारी न बनाएँ। परन्तु मानव कब मानता है। वह सम्भवत: निर्माण की अपेक्षा विनाश में अपने महत्त्व को प्रदर्शित करना चाहता है –

अब तुम लेकर आग उसी चूल्हे से

फैलाओ मत दावानल

ऊँची-ऊँची लपटों में धधकाकर

जलाओ मत पलक झपकते

गाँव, कसबे, मंदिर और मस्जिद

विश्वास की विरासत

आकाश और पाताल। (चूल्हे की आग)

4. उपसंहार :-

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दिन-प्रतिदिन के कार्य व्यापार, प्रकृति की अपार लीलाएँ, दिक्काल का अनंत विस्तार, हम इन कविताओं में एक गहरे मानवीय राग के साथ देख-सुन सकते हैं। समुद्र, आकाश, धरती, सूरज, चन्द्रमा, दूब, पेड़-पौधे, फल-फूल, पशु-पक्षी, ऋतु चक्र हमें जीवन बोध से इन कविताओं में जोड़ते हैं, पर अपूर्व हैं। इन कविताओं की जिस अगली विशेषता की ओर संकेत किया गया है वह है – इनमें वर्तमान में खड़े रह कर बहुत पीछे लौटना भी है तथा बहुत आगे देखना भी है। हम अनेक कविताओं में स्पष्ट कर चुके हैं कि कवि जीवन को अनेक जन्मों की श्रृंखला के रूप में देखता है और जीवन और जगत को जन्म-जन्मांतर के सम्बन्ध के रूप में अनुभव करता है, यथा- कब नहीं था, कहाँ नहीं होता (आकाश)

तलाश लेता है मुझे

मेरा पिछला दिन मेरे पिछले जन्म का शोक (दिन)

करती हो इस्त्री पोशाक मेरी

टाँग देती हो उसे

(मानो अगले जन्म के लिए) (वर्षा की सुबह)

मैं हूँ तुम्हारी ही प्रतीक्षा में। (मृत्यु)

मंदार की माला पहने

चला गया घूमने

किसी और के घर। (एक किशोर की मृत्यु)

कितने जन्म कितनी मृत्यु लग जाती है

कितने युग बीत जाते हैं, नहीं होता खेल खत्म। (हम)

आगे से आगे घूम रहा है। (लट्टू)

किस आदिम युग से पृथ्वी, कहाँ गये वे लोग, नया साल और बापी, चाँदनी में गाँव का श्मशान आदि शीर्षक कविताओं में जन्म और मृत्यु की एक साथ जोड़ कर देखा गया है।

'नीरवता' शीर्षक कविता में चिरकाल से झड़ते रहने वाले महुए के फूलों के माध्यम से कवि अपनी बात कहता है।

'ट्रेन में सुबह' कविता में कवि जिंदगी को निरंतर भगाता हुआ देखता है।

'यात्रा तेरी लम्बी हो' शीर्षक कविता का तथ्य सर्वथा अपने नाम के अनुरूप है।

'समुद्र' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ वर्तमान के साथ भविष्य को मिलाती हैं और अतीत के प्रति इंगित करती हैं –

उन पदद्चिह्नों को

लीप-पोंछ कर मिटाना ही तो है काम मेरा

तुम्हारी आतुर वापसी को

'चूल्हे की आग' शीर्षक कविता में अग्नि के अनंत जीवन की कहानी–आदि अंत रहित कहानी समाहित है। न जाने कितने अनंत काल से जलाए बैठे हैं अपना चूल्हा सूर्यदेव।

हम देखते हैं कि **वर्षा की सुबह** की कविता–संग्रह की कविताओं में जीवन–बोध की गहराई सर्वथा अपूर्व है और प्रेरणाप्रद भी, क्योंकि उसमें मृत्यु है, परन्तु वह जीवन को परास्त नहीं कर पाती है, यहाँ तक कि 'मृत्यु है लम्बी छुट्टी पर' और मृत्यु जहाँ है, वहाँ उसका स्वागत ही होता दिखाई देता है। तथा डरता है मौत से वह आदमी।

Lesson Writer

डॉ.शेख मौला अली

प्र 4. 'वर्षा की सुबह' में व्यक्त दार्शनिक विचारधारा पर विचार कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. बिम्ब योजना
3. आत्मा सम्बन्धी
4. प्रकृति सम्बन्धी
5. परमात्मा सम्बन्धी
6. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

''वर्षा की सुबह'' विविध कविताओं का संकलन है! इसके कवि सीताकांत महापात्र हैं। ''राजेन्द्र प्रसाद मिश्र'' ने इन कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया। पुस्तक में कविताएँ मौलिक (Original) लगती हैं। कहीं भी अनुवाद की छाप दिखाई नहीं देती !

''वर्षा कु सुबह'' कविताओं का संकलन जैसा शीर्षक है, वैसा ही भाव है ! सुबह का समय जितवा सुहावना होता है, कविताओं के पठन से पाठक का हृदय उतना उल्लसित होता है!

2. बिम्ब योजना :-

''वर्षा की सुबह'' कविता में कवि की भावना प्रतिबिम्बित होती है।

कवि आकाश, दिन, मृत्यु, साँस, लटटू, सूरज, चूल्ले की आग, रास्ता, समुद्र की भूल आदि कविताओं में तीन विषयों को प्रस्तुत करते हैं !

1. आत्मा सम्बन्धी
2. प्रकृति सम्बन्धी और
3. परमात्मा सम्बन्धी

3. आत्मा सम्बन्धी :-

मानव (कवि) सोचता है ! कवि शून्य को देखकर सोचता है और भगवान से निवेदन करके आकाश में विलीन हो जाने की कामना करता है! जन्म-मरण के चक्र में नये-नये आनंद नयी-नयी पीडाओं को भोगता रहता है।

वह मृत्यु का आह्वान करते हुए कहता है !

आना हो तो आओ

क्या मालूम नहीं तुम्हें

तुम्हारे उस आकाश की ओर

उन्मुख हूँ मैं हमेशा से

आओ, आकर बैठो मेरे पास!

अनेक जन्म बीत जाते हैं और अनेक बार मृत्यु भी होती है ! आत्मा विविध शरीरों में घूमती रहती है ! जीवन में वेदना का अभिषेक होता रहता है! मानव के प्राण नयी कामनाओं के साथ ललचाते हैं। ये जन्म-मरण के चक्र में मानव फिसकर वसुधा से निवेदन करता है।

''माँ वसुधा फट जा फिर एक बार

सीता को जगह देने की तरह अपनी गोद में

दे दे जगह थोड़ी मुझे भी।''

जिस प्रकार सीता तुम में समा गयी, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी गोद में समा जाना चाहता हूँ।

4. प्रकृति सम्बन्धी :-

हर कवि प्रकृति का उपासक होता है। आकाश, पथिक के तपन को दूर करता है। कवि खिल-खिलाकर हँसते हुए, मुखरित होने वाले सबेरे से अकर्षित होते हैं। फिर अन्धेरा बढ़ने पर अपने-अपने नीडों को (घोंसलें को) लौट आनेवाली पशु-पक्षियों के कलरव का वर्णन भी करते हैं।

जैसा कालिदास ने आषाढ़ में उमडते और गरजते आने वाले मेघों का वर्णन किया है, उसी प्रकार सीताकांत महापात्र भी वर्षा के अगमन का वर्णन करते हैं ।

''आया है वर्षा-काल

घन बरसता लगातार

बज रहीं दुंदुभि बादलों की

काँप उठी है सुबह!''

नारी को प्रकृति का भाग समझते हुए कवि तारे का प्रतीक मानते हैं।

''सिर्फ एक तारा'' !

कवि सूर्यास्त के सौन्दर्य पर मुग्ध होते हैं! साँझ के अद्वितीय सौन्दर्य पर मुग्ध होकर वे कहते हैं।

''देखोना कितना सुन्दर और,

सुहावना है यह साँझ'' !

इस प्रकार कवि प्रकृति के विविध दृश्यों का और विविध कोणों का विविध लक्षणों की बिम्ब योजना प्रस्तुत करते हैं।

5. परमात्मा सम्बन्धी :-

यह सारा जगत् किसी अलौकिक तथा अद्वितीय सत्ता के अधीन होकर चलता रहता है। आत्मा सदा परमात्मा को ताकती रहती है। भगवान कहीं संभोग में, स्वर्ग में या उन्मद में नहीं होता। वह श्मशान, रेगिस्तान और सून्य प्रतिक्षा में रहता है। भगवान की प्राप्ति के लिए कोमल पत्ते की आँखें चाहती हैं। यह सारी प्रकृति युग-युगों से परमात्मा के अधीन होकर रहती है।

झरना, नदी, समुद्र, बर्फ, ओस, वर्षा आदि के रूप में परमात्मा देवी की आत्मा विचरती रहती है। परमात्मा का प्रकाश दिगंतों को लांघ कर प्रसारित कर आता है। संसार में बेबसी जीव

''सुबह-सुबह उगते सूर्यदेव '' !

इस में कवि परमात्मा के प्रकाश का दर्शन करते हैं।

6. उपसंहार :-

कवि सर्वदर्शी है। वह सदा भावनाशील, विचारशील, अनुशीलक और सबसे बढ़कर ''स्रष्टा'' होता है । काव्य-सृजन अक्षर तपस्या है। काव्य नित्य अध्ययन, तथा अनुशीलन का प्रतिफलन है। यहाँ प्रतिफलन ''वर्षा की सुबह'' में दर्शित हुआ है। ऐसे ही कवि महान होते हैं।

जयंति ते सुकृतिनो रससिद्धा: कवीश्वरा: ।

नास्ति एषां यश: काये जरा मरणजं भयम्॥

Lesson Writer

डॉ.शेख मौला आली